कृषि–पूर्वी किरण

अंकः 3 वर्षः 2017

संपादक

श्यामल कुमार मंडल कल्याण सुन्दर दास
सती शंकर सिंह

भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान
भारतीय कृषि अनुसंघान परिषद
भूमि विहार कम्पलेक्स, ब्लॉक–जी.बी.,सेक्टर–III
सॉल्ट लेक, कोलकाता – 700 097
वेब साईट : www.atarikolkata.org

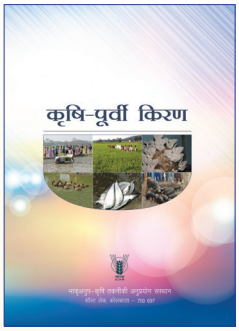

प्रकाशक
निदेशक, अटारी, कोलकाता

© इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री प्रकाशक की अनुमति के बिना कहीं भी प्रस्तुत करना निषेध है।

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण पूर्णतया संबंधित लेखक के हैं।

मुद्रक
ईस्टार्न प्रिंटिंग प्रसेसर, 93, दक्षिणदारी रोड., कोलकाता – 700048

संपादकीय

हम *'कृषि – पूर्वी किरण'* का यह तीसरा अंक आप तक पहुंचाने में सफल हो रहे है क्योंकि इस में आप सभी के प्यार, सहयोग एवं समर्थन है। हम आप सभी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं, आपको धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि आपका यह सहयोग हमें आगे भी इसी तरह सदैव ही मिलता रहेगा। हम अपने सभी रचनाकारों से भी कृतज्ञ हैं जिनकी रचनायें हमें बराबर समय से प्राप्त हो रही हैं।

कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान कोलकाता उन्नत कृषि के विभिन्न वैज्ञानिक शोध के उपलब्धियां प्रयोगशाला से लेकर कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से साधकों/हितधारकों तक उनके आपने भाषा में पहुंचाने के लिए निरंतर प्रयास कर रहा हैं। इस दिशा में *'कृषि – पूर्वी किरण'* पत्रिका का प्रथम अंक का प्रकाशन का शुभारम्भ एक अहम प्रयास था, जो कि सन 2015 में हुआ था। पत्रिका के इस तीसरा अंक के माध्यम से पूर्वतन क्षेत्र–2 के कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा किए गए आधुनिकतम कृषि तकनीकों की सफलतापूर्वक प्रयोग की कहानियॉ, सफलता गाथाएं आदि किसानों तक पहुंचाने का प्रयास किया गया है। हमारी यह कोशिश रही है कि हर आलेख के रचनाकारों के योगदान सही रूप से प्रतित हो। परन्तु यदि कोइ गलती रह जाए तो वह नितान्त अनिच्छाकृत है। इस अंक में तकनीकी आलेख के साथ–साथ कुछ लोकप्रिय आलेख भी दिए गए है।

हम संस्थान के प्रभारी निदेशक डॉ. सती शंकर सिंह का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं जिनका सहयोग एवं मार्गदर्शन हमें सतत प्राप्त होता रहा है। *'कृषि – पूर्वी किरण'* के यह तीसरा अंक का प्रकाशन में संस्थान के वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों के साथ–साथ अनुबंघ पर कार्यरत सभी कर्मियों का पूर्ण योगदान रहा है। हम उन सभी के आभार व्यक्त करते हैं। हम *'कृषि – पूर्वी किरण'* के प्रकाशन से जुड़े सभी लोगों के भी आभारी हैं।

आपके महत्वपूर्ण सुझावों का भी हमेशा ही प्रतिक्षा रहेगी ताकि भविष्य में इस प्रकाशन को और भी बेहतर बनाया जाए। हम पुनः सभी शुभचिन्तकों, लेखकों एवं सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए पत्रिका का इस अंक का सफलता कामना करते हैं।

ढेरों शुभकामनाओं सहित,

कोलकाता
सितम्वर 2017

संपादक

व्यक्ति अपने विचारों से निर्मित एक प्राणी है, वह जो सोचता है वही बन जाता है।

– महात्मा गांधी

विषय-सूची

क्र. सं.	लेख शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
1	टिकाऊ कृषि उत्पादन हेतु समेकित कीट प्रबंधन	डॉ. के. पी. सिंह एंव डॉ. राकेश कुमार	1
2	बेबीकॉर्न द्वारा उद्यमिता विकास	विनीता रानी	5
3	मुर्गीपालन से आर्थिक आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते दो कदम	डॉ. सुनीता कुशवाह डॉ. धर्मेन्द्र कुमार एवं डा. एस. के. मंडल	12
4	कटाई उपरांत मशरुम का उचित प्रबंधन एवं परिरक्षण	डॉ. नन्दना कुमारी	19
5	आम के रोग एवं कीटों का समेकित प्रबंधन	संजीत कुमार एवं डा. शम्भू राय	25
6	नालंदा जिले मे जैविक खेती द्वारा किसानों का सशक्तीकरण	संजीव कुमार	33
7	दुग्ध उत्पादन उद्योग का खगड़िया जिले के विकास में योगदान	ब्रजेंद्र कुमार	34
8	किसानों की समृद्धि में कृषि विज्ञान केन्द्र, औरंगाबाद की भूमिका	डा. नित्यानन्द	39
9	वैशाली जिले में बटेर पालन एक सफल व्यवसाय	डा. देवेंद्र कुमार	45
10	शिवहर जिले में मधुमक्खी पालन की रोजगारोन्मुखी संभावनायें	डा. आर. एन. सिंह	50
11	गोभी वर्गीय सब्जियों की वैज्ञानिक खेती	डा. आर. के. मंडल	54
12	ग्रामीण क्षेत्रों में फल एंव सब्जी भण्डारण की सरल विधियाँ	डा. सुधीर दास एवं ई. शैलेश कुमार	60
13	लौकी की वैज्ञानिक विधि से व्यवसायिक खेती	राहुल कुमार वर्मा	64
14	वायु श्वासी मछलियों का पालन	डा. मंगलानन्द झा	71
15	फौब्बारा सिंचाई विधि	अशोक कुमार	74
16	मशरूम की खेती	डा. संजीव कुमार	79
17	ग्रामीण विकास का उत्तम साधनः उन्नत डेयरी	डा. संजीव कुमार	80
18	अनानास एक रसीला फल	हेमन्त कुमार सिंह, नीरज प्रकाश एवं के. एम. सिंह	85
19	सोयाबीन प्रसंस्करण द्वारा महिला सषक्तिकरण	डा. रीता सिंह	89
20	सब्जियों की संरक्षित खेतीः अर्थोपार्जन का उत्तम विकल्प	डा. वि. के. पांडे	93
21	टिकाउ खेती में जैविक खाद का महत्व एवं निर्माण	डा. शमेश्वर प्रसाद	99
22	व्यावसायिक वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन द्वारा उद्यमशीलता विकास	डा. घनंजय मंडल	105

जब तक काम हो ना जाये वो असंभव लगता है।

– नेल्सन मंडेला

टिकाऊ कृषि उत्पादन हेतु समेकित कीट प्रबंधन

डॉ. के. पी. सिंह एंव डॉ. राकेश कुमार

कृषि विज्ञान केन्द्र, अरवल

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ के गाँव में रहने वाले अधिकांश लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि हैं। लेकिन देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को देखकर काफी चिन्ता होती हैं। वहीं दूसरी तरफ फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए छिड़की गयी कीटनाशी दावाओं के प्रयोग से मिट्टी में जहर का प्रभाव चरम सीमाओं के तरफ बढ़ता जा रहा है। जिसके कारण मृदा स्वास्थ पर सभी दिशाओं में बुरा प्रभाव पर रहा हैं। चाहे वह फल, साग, सब्जी, दूध, दही, माँस, मछली, पानी या वातावरण, सभी में कीटनाशी जहर का लिप्त हो रहा है। जिसके उपयोग से दिन–प्रतिदिन मृदा जनित बीमारियाँ मानव एवं पशुओं और पेड़–पौधों में उत्पन्न होती जा रही है।

मृदा स्वास्थ पर कीटनाशक अवशेषों का प्रकोप :–

यह चिन्ता का विषय है जो सिर्फ मिट्टी से नही बल्कि खाने वाले हर वस्तु से है। चाहे वह चपाती हो, फल, दूध, माँस, मछली, सब्जी हो बार–बार मिट्टी सर्वेक्षण से यह तथ्य सामने आया हैं, कि भारत के मिट्टी में अन्य देशों के तुलना में कुछ जहरीले कीटनाशक रसायन के मात्रा अधिक होती हैं। इससे उत्पादित खाद्य पदार्थो के कारण मनुष्य के हृदय, पेट, दिमाग के बीमारियाँ हो रही हैं, एवं गुर्दे तथा जिगर के नष्ट होने और कैंसर तक होने का खतरा बढ़ जाता हैं।

(क) व्यवहारिक नियंत्रण :– व्यवहारिक नियंत्रण का तात्पर्य ऐसे नियंत्रण कीटों से है जिसके परम्परागत अपनाये जाने वाले क्रिया–कलापों/विधियों में थोड़ा बदलाव करके कीटों के आक्रमण को कम किया जायें। व्यवहारिक कीट नियंत्रण में सफलता के लिए सबसे अनिवार्य यह है, कि इन क्रियाओं का प्रयोग कीटों के आक्रमण शुरू होने से पहले किया जाना चाहिए। इस नियंत्रण का प्रयोग फसल–चक्र को अपनाना, खेत में पानी लगाकर दो बार पडलिंग करना, बीजों का उपचारित करना, भूमि परीक्षण एवं सन्तुलित उर्वरक का प्रयोग करना, खेतों का समतल बनाना, तथा खर–पतवार एवं अवशेषों को नष्ट करना, मेड़ पर फसल लगने के पहले चूहों को जीवित बिलों का पता लगाना, समय पर रोपाई करना, पौधे का रोपाई निश्चित दूरी पर करना, बुआई के तीन सप्ताह बाद रोपाई शामिल हैं। हानिकारक कीटों के रोकथाम लाभदायक कीटों के संरक्षण हेतु निम्नलिखित बातों का ध्यान देना आवश्यक है।

(1) ग्रीष्मकालीन जुताई :– गर्मीयों में गहरी जुताई करने से कीड़े और सुड़ियों आदि जो जमीन के नीचे होते हैं, जुताई के बाद वह उपर आ जाते हैं, तथा सुर्य की रोशनी के गर्मी के कारण एवं चिड़ियों के द्वारा अधिकांश कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

(2) खरपतवार नियंत्रण :– खेतों में रोपाई के पहले दो बार पडलिंग करने से मोथा, दूब घास, एवं

अन्य खरपतवार का नियंत्रण सफलता पुर्वक किया जा सकता है जो की खरपतवार रसायनों द्वारा भी संभव नहीं है। पानी की उचित मात्रा एक महीने तक खेत में रहने से खरपतवार का नियंत्रण किया जा सकता है। खरपतवार के नियंत्रण से हानिकारक एवं कीटों के विभिन्न अवस्थाओं जो खरपतवार पर अपनी वृद्धि करते हैं, उसका भी रोकथाम किया जा सकता है।

(3) प्रभेद का चुनाव :– प्रभेदों के चुनाव में शीघ्र पकने वाली प्रभेदों का चुनाव करने से हानिकारक कीटों की संख्या कम किया जा सकता है।

(4) समय पर रोपाई :– रोपाई जुलाई के मध्य तक सम्पन्न कर लेने से हानिकारक कीट जैसै– धान का बाँझ, तना छेदक, सफेद एवं हरा फूँदका आदि समस्याओं का समाधान हो सकता है। कुछ कीड़े एवं बीमारियाँ ऐसे होते हैं जिसका अधिक प्रकोप फसल के एक अवस्था पर ही होती हैं। यदि एक क्षेत्र में किसान भाई फसलों का समय पर तथा साथ–साथ लगाये तो कीड़े और बीमारियों के बढने के लिए एक सीमित समय ही मिल पायेगी तथा उनको खाने वाले लाभदायक कीटो के संख्या भी अधिक अनुपात में होती ऐसा न करने सें हानिकारक कीटो का एक लम्बे समय तक उस क्षेत्र में अपनी प्रकोप दिखाने का मौका मिलेगा।

(5) पंक्तियों एवं पौधे के दूरी :– भूरा मधुआ का प्रकोप वाले क्षेत्र में 2–3 मिटर के बाद एक या दो कतारों को छोड़ कर रोपाई करने से भी वायु का आगमन सुलभ हो जाता है, जहाँ एक ओर नमी में कमी होती हैं तो वही दूसरी ओर सुर्य के रोशनी जड़ो तक पहुँचने से मधुआ को छुपने की जगह नही मिलती है।

(6) उचित जल प्रबंधन :– एक महीने तक खेत में उचित जल का प्रबंधन करने से खरपतवार का नियंत्रण एवं हानिकारक कीटों का रोकथाम किया जा सकता है। बाल (अनाज का फल) एवं दाना भरते समय पानी की अधिक आवश्यकता होती है। अतः खेत में एक इंच पानी रहने से पैदावार तो अधिक होगा ही साथ–साथ पानी में रहने वाले कीटों का संरक्षण भी होगा। भूरा मधुआ प्रकोप वाले क्षेत्र में जल जमाव नही होना चाहिए। प्रकोप के दशा में खेत में से पानी निकाल देना चाहिए। हिस्पा कीट वाले क्षेत्र में भी यही प्रकिया अपनानी चाहिए।

(7) मिट्टी की जाँच :– खेत में मिट्टी का जाँच अवश्य करावा लेना चाहिये। मिट्टी के जाँच के उपरान्त ही संस्तुति के अधार पर उचित मात्रा में विभिन्न रसायनिक खादों का प्रयोग करना चाहिए।

(8) रसायनिक खादों का अनुपातिक प्रयोग :– खेत में नेत्रजन, पोटाश का अनुपात परीक्षण की जा रही प्रजातीयों, कृषि संस्तुतियों के अधार पर प्रयोग करना उपयुक्त रहेगा। उर्वरक का उचित मात्रा में प्रयोग हानिकारक कीटों का उपलब्धता में काफी कमी कर देगा। पोटाश के प्रयोग से पौधे के टिशु (उतक) मजबूत हो जाते हैं। जिसके कीड़ो के खिलाफ अवरोधक क्षमता अधिक बढ़ जाती है।

(9) खेतों की सफाई :– खेतों की निराई–गुराई करके खेतों की सफाई करने से टिड्डा, हरा फुदका, धान के बाल काटने वाले कीट, दलीय गिडार, झींगा रोग आदि का नियंत्रण किया जा सकता है। खेतों

में खरपतवार न रह पाये क्योंकि बहुत से कीड़े एवं बीमारियाँ पर अपनी जीवन चक्र पूरा करती हैं जैसे– धान का तना छेदक, धान का डंडिया, मेड़ या तालाब के आस–पास उगे जंगली घास एवं धान में उपलब्ध होने पर शंखो के रूप में जीवित रहता है।

(10) खेतों में पाये जाने वाले मित्र कीटों का संरक्षण :– हानिकारक कीटों के विभिन्न अवस्थाओं में उत्पन्न होने वाले कीटों को खाने वाले प्राकृतिक शत्रु हमारे खेतों में रहते हैं, और उन्ही के ऊपर जीवित रहते हैं। मित्र कीटों के जनसंख्या में वृद्धि के अनुपात में 3–10 गुणा अधिक होने के कारण एवं अल्प समय में जीवन चक्र पूरा करने के कारण मित्र कीटों हानिकारक कीटों का नियंत्रण समयानुसार कर लेते हैं।

(11) मित्र कीट एवं शत्रु कीट के अनुपात में निगरानी :– खेतों में मित्र कीट एवं शत्रु कीट के अनुपात में निगरानी समय–समय पर करना आवश्यक है। मित्र कीट एवं शत्रु कीट के जनसंख्या निगरानी हर सप्ताह करनी चाहिए तथा मित्र कीटों के जनसंख्या न बढने पर निकट के कृषि रक्षा ईकाई से संम्पर्क कर इंगित शत्रु कीटों के लिए प्रयोग की जाने वाले रसायनों का प्रयोग विशेषज्ञ की संस्तुति (परामर्श) पर करनी चाहिए।

(12) फसल चक्र :– हर वर्ष एक ही फसल उपजाने से फसल के नुकसान करने वाले कीड़ो तथा बीमारियों एवं खरपतवार उन खेतों में स्थायी रूप से मौजुद रहते हैं। अतः फसल चक्र के अपनाने से उन पर हानिकारक कीड़े तथा बीमारियों एवं खरपतवार से काफी सहायक सिद्ध होता है।

(13) रबी फसल पर शस्य क्रियाएँ :– इसमे हाथ से पकड़ कर अण्डो एवं गिडारो को नष्ट कर देना चाहिए। जैसे – तना छेदक का अण्डा या उसका डेड हर्ट, धान के खेतों में बाँस के उसके टहनीयों सहित गाड़ देना चाहिए। ऐसा करने से पक्षी बाँस के टहनीयों पर बैठता है, और सैनिक कीट एवं बगैरह के गिडार को खा जातें हैं।

(14) अवरोधी जातियाँ :– अवरोधी जातियाँ लगाकर कुछ हद तक कीडो तथा बीमारियों की समस्या का सामधान कुछ सीमा तक किया जा सकता हैं, जैसे– भूरा फफूँदी के लिए सोनाली, तना छेदक के लिए भाग्याश्री आदि, इसके लिए राज्य कृषि विभाग द्वारा संस्तुति प्राप्त अवरोधी जातियों का प्रयोग करना चाहिए। कहीं–कही तो ऐसा भी अनुभव किया गया है, कि यदि भूरा मधुआ का प्रकोप हो तब दो खेतों के बीच अरहर, ज्वार, बाजरा, मक्का, जैसी लम्बी फसलों का खेत हो तो यह कीट एक खेत से दुसरे खेत तक आसानी से न पहुँचकर बीच में उलझ कर रह जाती हैं।

(ख) फसलो में परिस्थितिक तन्त्र का अध्ययन :– फसलों की निगरानी करने का यह एक आधुनिक तरीका है। किसान फसलों की खेतीवारी करने जाता है, लेकिन वह मेड़ के किनारे घूमकर चला आता है। इससे उस फसल के अच्छाई या बुराई की जानकारी असानी से नही हो पाती है। इसलिए किसानों को इस बात की सलाह दी जाती है, कि वे जब अपने खेत की निगरानी करने जायें तो, खेत में कम से कम पाँच कदम घूमकर चारों तरफ खेत के बीच वाले हिस्से में इस तरह से पाँच जगहों पर खडा होकर पौधों को उनके अगल–बगल खरपतवार, कीड़े, मकोड़े, परभक्षी, परजीवी और खेत में पानी के कमी या अधिकता, हवा

रूख, तापमान, बरसात, और उर्वरक की कमी या अधिकता की जानकारी खेत को देखकर हासिल करनी चाहिए। क्योंकि इन सारे जैविक एवं अजैविक तत्वों का मिला–जुला प्रभाव उस खेत के फसल पर पङता है। और यह सारे तत्व मिलकर खेत में एक ऐसे परिस्थितिक या वातावरण का निर्माण करते हैं, जिससे उस खेत की फसल प्रभावित होती है। इसी के अध्ययन को हमलोग परिस्थितिक तंत्र का विश्लेषण कहते हैं।

इसके चार अधारभूत सिद्वान्त हैं

1. फसल का सात दिनों तक निगरानी करना।
2. निगरानी करने के बाद, जो भी जानकारी आपको मिलें उसे कागज पर उसका चित्र बनाना।
3. इस न0 2 के अधार पर आस–पास के गाँव के किसानों के बीच में इसके बारे में चर्चा करनी चाहिए।
4. इस आपसी चर्चा के अधार पर खुद फैसला करना की खेत में आगे क्या कार्यवाही किया जायें।

(ग) जैविक नियंत्रण :– खेतों का निरीक्षण करते समय प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे कृषक एवं प्रसार कार्यकर्ताओं की प्राकृतिक जैविक प्रतिनिधिओं जैसें – परजीवी (पैरासाइट), परभक्षी (प्रीडेटर्स), कीड़ों, मकड़ीयों एवं सुक्ष्म संक्रमियों (पैन्थोजेन्स) के जीवित नमूनों का अध्ययन करना चाहिए क्योंकि ये किसान के प्राकृत मित्र हैं, और एक शांत सैनिक के रूप में नाशकीटों का विनाश करते रहते हैं।

(घ) यांत्रिक नियंत्रण :– कई जगहों पर यांत्रिक नियंत्रण विधियों जैसें –एकत्र करना, चुन–चुन कर काटना, आदि द्वारा कीट नियंत्रण से बड़ा सहयोग मिलता हैं। कीट के आड़े समूहों हेलियोथिस एवं स्पोडोंप्टेश आदि कि विकसित सुङी, सफेद गिडार के पौढ़ आदि के एकत्र करके नष्ट करना इन नाशकीटों की संख्या को नियंत्रित करने में उपयोगी हैं। अनेक कीड़ो के रोकथाम के लिए लियोफेरोमोन ट्रेप एवं प्रकाश प्रपंच या फीस (लाइट ट्रेप) एवं चिङियाँ के आश्रय आदि का उपयोग हो रहा है। कृषको को इन सब साधनों के महत्व को विस्तार सें समझना कार्यक्रम के लिए उपयोगी एवं आवश्यक है।

(ड.) नीम आधारीय रसायनों से नाशकीट का नियंत्रण :– किसी कीट या रोग का स्वर यदि आर्थिक क्षति स्तर तक पहुँच जाए तो उसके उपचार के व्यवस्था करने के लिए जैविक कीटनाशकों के साथ–साथ नीम आधारीय रसायन तथा कीड़ो के विकास को नियंत्रित करने वाले रसायन जैसे – डाइफलूबैन्जुरान जो हमारे देश में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, इसका उपयोग किसानों को करना चाहिये।

(च) अपरिहार्य स्थिति में रसायनिक उपचार :– एकीकृत नाशकीट प्रबंधन का मुख्य उदेश्य यही है कि फसलों पर रसायनिक उपचार केवल तभी किया जाये जब और कोई विकल्प नहीं रह जाये। और ऐसा करना नितान्त अपरिहार्य हो, सुरक्षित एवं उचित कीटनाशक रसायन का उपयोग करना चाहिए। बहुउद्येशीय (ब्राडस्पेक्ट्रम) कीटनाशक रसायन का उपयोग को हतोत्साहित किया जाना चाहिये। अन्यथा कीटों में प्रतिरोधात्मक एवं फिर से उद्येश्य (रिसरेजेन्स) का विकास होगा। किसानों को चाहिए कि उचित रसायनों का संतुलित उपयोग तथा विषैले रसायनों के स्थान पर वनस्पतिक जनित कीटनाशकों जैसे– नीम आधारीय रसायनों का उपयोंग करना चाहिए।

बेबीकॉर्न द्वारा उद्यमिता विकास

विनीता रानी

कृषि विज्ञान केन्द्र, पटना

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ पिछले कुछ दशकों के दौरान बड़े परिवर्तन आए हैं। देश में जोत छोटी हो रही है और धीरे–धीरे अधिकांश जमीन औसत दर्जे के और छोटे किसानों में बंट रही है। इस तरह से जोतों की संख्या बढ़ रही है और इन किसानों द्वारा जोती जाने वाली जमीन का रकबा भी बढ़ रहा है। कुल मिलाकर देशभर में छोटे किसानों का प्रतिशत लगभग 83.5 है, जिनमें से अधिकतर उत्तर प्रदेश, बिहार और आंध्रप्रदेश में हैं। अधिकांश छोटे किसान गरीबी रेखा से नीचे आते हैं और उनकी आज की सबसे बड़ी समस्या बेरोजगारी है। ग्रामीण युवकों एवं युवतियों को काम नहीं मिलने के कारण उन्हें आर्थिक समस्या का सामना करना पड़ता है। बेरोजगारी आज इस स्तर पर पहुंच गयी है कि युवा वर्ग ऐसी नौकरी करने पर मजबूर हो जाते हैं जिसमें उनका शारीरिक दोहन होता है तथा उनके साथ अन्याय होता है इस कारण उनमे बहुत सी कुंठायें घर कर जाती हैं। आज के समय में सबको नौकरी मिलना संभव नहीं है। इन विषम परिस्थितियों में एक ही रास्ता है जो सारी समस्याओं से निदान दिला सकता है और वो है पारिवारिक खेती के माध्यम से उद्यमिता विकास। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे युवावर्ग रोजगार के लिए दूसरों पर आश्रित न रहें बल्कि वे कुछ ऐसा करें कि वे ही दूसरों को रोजगार दें। इसके लिए ग्रामीण युवा वर्ग को अपने परिवार के साथ कृषि की नयी–नयी तकनिकों के बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए ताकि वे अपने भरण–पोषण के साथ कुछ अतिरिक्त आय भी प्राप्त कर सकें। इस दिशा में बेबीकॉर्न का उत्पादन एवं प्रसंस्करण उनके लिए एक नई राह दिखा सकता है, क्योंकि आज के समय में बेबीकॉर्न की पौष्टिकता को ध्यान में रखते हुए इसकी मांग काफी बढ़ गयी है। यह कम समय एवं कम खर्च में उत्पादित होने वाला पौष्टिकता से भरपूर एक ऐसा फसल है जिसकी मांग के कारण अच्छा मूल्य प्राप्त हो जाता है। अतः इसकी खेती करके ग्रामीण परिवार अपनी आर्थिक स्तर में सुधार ला सकते हैं।

बेबीकॉर्न विशेष प्रकार के मक्के (भुट्टा) की एक प्रजाति है जिसे सूत निकलने के 1–2 दिन के अंदर तोड़ लिया जाता है। अर्थात् बेबीकॉर्न मक्के के भुट्टे की प्रारंभिक अवस्था को कहते है, जिसमें भुट्टे को परागण होने से पहले की कोमल अवस्था में तोड़ लिया जाता है। आजकल बेबीकार्न की खेती बहुत लोकप्रिय हो रही है क्योकि इसकी उपज से कम समय एवं कम लागत में तीन गुणा से भी ज्यादा पैसा कमाया जा सकता है। यह मक्का की साधारण फसल से नगदी फसल बनता जा रहा है। इसका उपयोग सलाद, सूप, सब्जी, हलवा, खीर, रायता, अचार इत्यादि बनाने में किया जाता है। इसका उपयोग थाइलैण्ड, ताइवान, हांगकांग आदि देशों में काफी पहले से किया जा रहा है परन्तु अब अरब देशों में भी इसकी मांग बढ़ती जा रही है। इस कारण अधिक से अधिक बेबीकार्न की खेती करके, डिब्बाबन्दी करके इसका निर्यात भी किया जा सकता है। इसकी खेती मुख्यतः शहर के आसपास के क्षेत्रों में अधिक लाभकारी है। यदि इसे रोजगार पूरक फसल के रूप में उगाया जाए तो यह आय का अच्छा साधन बन सकता है। राष्ट्रीय एवं

अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इसकी मांग अधिक होने के कारण इसकी बिक्री तथा निर्यात में भी कोई कठिनाई नहीं आती है। चूँकि यह एक कम अवधि की फसल है इसलिए किसान भाई इसकी फसल लेने के बाद दूसरी फसल भी ले सकते हैं। इस तरह से कम समय में इसकी खेती करके रोजगार का अच्छा साधन एवं आय का बेहतर स्त्रोत बनाया जा सकता है।

लाभ :– यह बहुत ही पौष्टिक होता है, जिसमे कैल्शियम, फास्फोरस अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इसके साथ–साथ इसके हरे पौधे से पशुओं के लिये चारा मिलता है तथा साइलेज तैयार किया जाता है। साइलेज में 13.2 प्रतिशत प्रोटीन, 1.4 प्रतिशत वसा, तथा 34.8 प्रतिशत रेशा पाया जाता है जो कि पशुओं के लिये संतुलित आहार होता है। बेबीकॉर्न की मांग बढ़ने की मुख्य धारणा यह भी है कि यह कीट रसायनों के हानिकारक प्रभाव से बिल्कुल भी प्रभावित नहीं होता है क्योंकि यह ऊपर से कई परत पत्तों से ढ़का रहता है। बेबीकॉर्न की मांग भोजन के रूप में तो है ही साथ ही साथ इससे औधोगिक महत्व की अनेक चीजें जैसे स्टार्च, ग्लूकोज, रेयान कागज, प्लास्टिक लेई या गोंद, रंग, कृत्रिम रबड़, पैकिंग पदार्थ इत्यादि भी तैयार होते हैं।

बेबीकॉर्न के आहार मूल्य प्रति 100 ग्राम

नमी	: 89.10 फीसदी	वसा	: 0.020 ग्राम
प्रोटीन	: 1.90 ग्राम	कार्बोहाइड्रेट	: 8.20 मिग्रा.
राख	: 0.60 ग्राम	कैल्शियम	: 98.0 मि.ग्राम
फास्फोरस	: 86.0 मिग्रा.	लौहतत्व	: 0.10 मि.ग्रा.
एस्कार्बिक एसिड	: 11.0 मि.ग्रा.	विटामिन ए	: 64.0 मि.ग्रा.

बेबीकॉर्न की उन्नत किस्में :– बेबीकॉर्न की अच्छी खेती के लिए जल्दी तैयार होने वाली किस्मों में अर्ली कंपोजिट व बी०एल०–42, एम०ई०–114, एम०ई०एच०–133, बी०एल०–78, गोल्डन बेबी, प्रकाश, केसरी, पी०एस०एम०–3, नवीन, तरूण, सूर्या, हिम–129, बी०एल०–88, विवेक–9, अमर और दक्कन–107 मुख्य हैं।

भूमि का चुनाव :– इसकी खेती के लिए हर तरह की मृदा जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो, उपयुक्त मानी जाती है। यह बलुई से लेकर भारी मृदा तक सभी प्रकार की भूमियों में उत्पादित होता है।

खेत की तैयारी :– गर्मी के दिनों में मिट्टी पलटनेवाले हल से गहरी जुताई करनी चाहिए। बुआई से पहले एक गहरी जुताई करके 2–3 बार हैरो या कल्टीवेटर से जुताई करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगाना चाहिए, जिससे मिट्टी भुरभुरी हो जाय और भूमि में नमी बनी रहे।

बुआई :– अधिक उपज प्राप्त करने के लिए बीज की बुआई लाइन में की जानी चाहिए, लाइन से लाइन की दूरी 40 से.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 15–20 से.मी. हो। इसके लिए 35–40 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज की जरूरत होती है।

खाद एवं उर्वरक :– खेत को तैयार करते वक्त करीब 100–120 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से सड़ी गली गोबर की खाद डालनी चाहिए, इस के अलावा 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50–60 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 40 से 50 कि.ग्रा. पोटाश की आवश्यकता प्रति हेक्टैयर होती है जिसमें से फास्फोरस, पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की 1/3 मात्रा बुआई के समय खेत में बराबर मिला देते है तथा नाइट्रोजन की 1/3 मात्रा बुआई के 25–30 दिन बाद तथा शेष मात्रा नर मंजरी निकलते समय देना चाहिये, इससे बेबीकॉर्न की अच्छी फसल प्राप्त की जा सकती है।

सींचाई :– बसंत ऋतु में उगायी गयी फसल में 8–10 दिन के अन्तराल पर लगातार सींचाई करते रहना चाहिए। खरीफ मौसम में वर्षा न होने पर आवश्यकतानुसार सींचाई करनी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन :– खरपतवार रोकने के लिए 2–3 बार निराई–गुड़ाई की जरूरत पड़ती है। रासायनिक विधि द्वारा खरपतवार की रोकथाम के लिए बुवाई के 48 घंटे के अंदर 1.25 कि.ग्रा. एट्राजीन (घास नाशक दवा) 700 लीटर पानी में मिला कर छिड़काव करना अच्छा होता है।

रोग से रोकथाम :– बेबीकॉर्न थोड़े समय की फसल है इसलिए इसमें बीमारियों की समस्या ज्यादा नहीं होती, फिर भी कुछ इलाकों में पत्ती झुलसा रोग से कुछ नुकसान हो सकता है, अतः रोग का पता चलते ही रिडोमिल एमजेड या इंडोफिल एम–45 का छिड़काव करना चाहिए।

नर मंजरी को तोड़ना :– बेबीकॉर्न की अच्छी उपज लेने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्य नर मंजरी को तोड़ना है। पौधों में फूल आने से पहले ही नर मंजरी को तोड़ देने से अधिक भुट्टे का निर्माण होता है तथा परागण न होने से भुट्टे की गुणवत्ता भी खराब नहीं होती है।

तुड़ाई :– बाजार में अच्छी बिक्री के लिए तुड़ाई के समय भुट्टे की लंबाई 4.5 से 10 से.मी. व मोटाई 8 से 15 मि.मी. और वजन औसतन 35 से 40 ग्राम होना चाहिए। ऐसे भुट्टों की तुड़ाई रेशा दिखाई देने के 1 से 2 दिन के अंदर करनी चाहिए। तुड़ाई करते वक्त सबसे ज्यादा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि तने का ऊपरी या निचला हिस्सा ना टूटे, ताकि एक पौधे से 2 से 4 भुट्टे हासिल किए जा सकें। तुड़ाई हर दूसरे या तीसरे दिन करें। तोड़ी गई बेबीकॉर्न का रंग हल्का पीला होना चाहिए एवं उसे 24 घंटे के अंदर बाजार या फैक्टरी में पहुँचा देना चाहिए।

बाजार की जानकारी :– बेबीकॉर्न की मांग आजकल पांच सितारा होटल एवं शहरों में ही नहीं बल्कि आम घरों में भी होने लगी है। शादी हो या जन्मदिन की पार्टी इसे एक व्यंजन के रूप में शामिल किया जाता है। इसकी मांग व बाजार मूल्य की पूरी जानकारी करके ही बिक्री की जानी चाहिए ताकि अच्छा लाभ प्राप्त हो सके।

उपज एवं शुद्ध लाभ :– बेबीकॉर्न की एक फसल से 15 से 18 क्विंटल प्रति हैक्टेयर पैदावार हासिल की जा सकती है, यानि एक हेक्टेयर में बेबीकॉर्न की एक फसल से 50 हजार रूपए तक की आमदनी हो सकती है, जबकि मक्के की साधारण खेती से यह आमदनी 12 से 15 हजार रूपए तक ही हो पाती है।

भुट्टे के अतिरिक्त 200 से 250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर हरे पौधों की भी उपज प्राप्त होती है जिसे साइलेज बनाने या हरी खाद के रूप में उपयोग किया जा सकता है। साथ ही साथ पशुओं के चारे में भी इसका उपयोग किया जा सकता है।

विपणन :– बेबीकॉर्न की बिक्री सीधे ही होटलों और रेस्तरां में कर सकते हैं। लेकिन यदि इसका मूल्य संवर्धन की तकनीकी द्वारा प्रसंस्करण किया जाए तो विभिन्न उत्पादों के रूप में इससे ज्यादा आय प्राप्त किया जा सकता है। इनमें से कुछ उत्पाद तैयार करने विधि नीचे दर्शाई गई है:–

1) बेबीकॉर्न सूप

सामग्री :–

बेबीकॉर्न	: 300 ग्राम	फ्रेंच बीन	: 50 ग्राम
गाजर	: 50 ग्राम	पत्तागोभी	: 25 ग्राम
मक्खन	: 1 चम्मच	कॉर्न फ्लोर	: 2 चम्मच
नमक	: स्वादानुसार	काली मिर्च	: स्वादानुसार

विधि :– बेबीकॉर्न और सब्जियों को धोकर छोटा–छोटा काटकर मुलायम होने तक उबालें। उबली सब्जी और बेबीकॉर्न को छान लें। कॉर्न फ्लोर का पानी के साथ पेस्ट बनाएं और छाने हुए सूप में मिला कर 5 मिनट तक उबालें। नमक और काली मिर्च उबले हुए सूप में मिलाएं। परोसते समय मक्खन और 1/4 से.मी. लंबे टुकड़े किए हुए बेबीकॉर्न एवं गाजर डालें।

2) बेबीकॉर्न कटलेट

सामग्री :–

बेबीकॉर्न	: 150 ग्राम	आलू	: 150 ग्राम
ब्रेड का चूरा	: 2.5 बड़े चम्मच	कॉर्न फ्लोर	: 1 बड़ा चम्मच
मैदा	: 1 छोटा चम्मच	हरी मिर्च	: 3
मिर्च पाउडर	: आधा चम्मच छोटा	गर्म मसाला	: आधा चम्मच छोटा
तेल	: तलने के लिए		

विधि :– बेबीकॉर्न को धोकर मिक्सी में महीन पीस लें। आलू उबालकर छीलकर मसल लें और पीसे हुए बेबीकॉर्न में मिला दें। सभी मसाले लेकर इसमें मिलाएं और अंडाकार आकार का कटलेट बना लें। कॉर्न फ्लोर एवं मैदा का गाढ़ा घोल बनाकर इसमें कटलेट डुबोकर ब्रेड के चूरा में लपेटें और हल्का भूरा होने तक तलें। कटलेट को तेल सोखने वाले पेपर पर रखें एवं चटनी या सॉस के साथ खाएं।

3) बेबीकॉर्न की खट्टी–मीठी चटनी

सामग्री :–

बेबीकॉर्न	: 1/2 कि.ग्रा.	चीनी	: 250 ग्राम
प्याज	: 100 ग्राम	इमली	: 50 ग्राम
अदरक	: 10 ग्राम (बारीक कटा)	लहसुन	: 10 ग्राम
मिर्च पाउडर	: 10–15 ग्राम	गरम मसाला	: 5 ग्राम
पानी	: 100 मि.ली.	एसिटिक एसिड	: थोड़ा सा
नमक	: 10 ग्राम		

विधि :– गर्म पानी से धोकर बेबीकॉर्न को साफ करें और महीन पेस्ट बना लें। बारीक कटी प्याज, अदरक, लहसुन पेस्ट और पानी बेबीकॉर्न पेस्ट में डालें और नर्म होने तक पकाएं। इमली को पानी में थोड़ी देर भिगो के एवं छानकर गाढ़ा पेस्ट बना लें, इसे भी बेबीकॉर्न पेस्ट में मिला दें। नमक, मसाले डालें और पेस्ट गाढ़ा होने तक पकाएं। चीनी मिलाकर थोड़ी देर और पकाएं। प्लेट टेस्ट करें। एसिटिक एसिड डालें और आंच से उतार लें। साफ जार में भरकर बंद कर दें।

4) बेबीकॉर्न का रायता

सामग्री :–

बेबीकॉर्न	: 100 ग्राम	दही	: 250 ग्राम
काला नमक	: स्वादानुसार	काली मिर्च पाउडर	: 1 चुटकी
भुना जीरा पाउडर	: 1 चुटकी		

विधि :– बेबीकॉर्न को धोकर कद्दूकस कर लें। थोड़े पानी में नर्म होने तक उबालें। दही को फेंट ले, बेबीकॉर्न को ठंडा कर दही में मिलाएं। नमक, काली मिर्च पाउडर और जीरा पाउडर मिलाएं।

5) बेबीकॉर्न की मिली जुली चाट

सामग्री :–

बेबीकॉर्न	: 200 ग्राम	प्याज	: 100 ग्राम
टमाटर	: 100 ग्राम	उबले आलू	: 100 ग्राम
अंकुरित मूँग	: 50 ग्राम	हरी मिर्च	: 4 पीस
नींबू	: 1 पीस	काली मिर्च पाउडर	: 1 चम्मच
चाट मसाला	: 1 चम्मच	काला नमक	: स्वादानुसार
हरी धनिया	: 50 ग्राम कटी हुई		

विधि :– बेबीकॉर्न को धोकर उबलते पानी में नरम होने तक पकाएं। एक से.मी. मोटाई में बीबीकॉर्न के

गोल टुकड़े काटें। प्याज, टमाटर, आलू को छोटा–छोटा काट लें। हरी मिर्च एवं धनिया पत्ती को भी बारीक काट लें। सभी सब्जियों एवं बेबीकॉर्न को आपस में मिलाएं। काली मिर्च, नमक एवं चाट मसाला छिडक दें और ऊपर से नींबू का रस डालें। अच्छे से मिलाएं एवं हरी धनिया से सजाकर परोसें।

6) बेबीकॉर्न–टमाटर सूप

सामग्री :–

बेबीकॉर्न	: 100 ग्राम	टमाटर	: 200 ग्राम
मक्खन	: 1 चम्मच	कॉर्न फ्लोर	: 2 चम्मच
नमक व काली मिर्च	: स्वादानुसार	भुना जीरा	: आधा चम्मच

विधि :– टमाटर और बेबीकॉर्न को धोकर बारीक काट लें और गलने तक उबालें फिर उसे छान लें। कॉर्न फ्लोर को थोड़े से पानी में घोलकर पेस्ट बनाएँ और छाने हुए सूप में मिला लें। नमक व काली मिर्च सूप में डालें और 5 मिनट तक धीमी आंच पर पकाएं। परोसते समय मक्खन और गर्म पानी में धोए चौथाई से.मी. मोटे बेबीकॉर्न के गोल टुकड़े डालें।

7) बेबीकॉर्न के पकौड़े

सामग्री :–

बेबीकॉर्न	: 150 ग्राम	बेसन	: 150 ग्राम
लाल मिर्च पाउडर	: स्वादानुसार	गर्म मसाला	: आधा छोटा चम्मच
नमक	: स्वादानुसार	तेल	: तलने के लिये
लहसुन	: 4 कली पीसी हुई		

विधि :– बेबीकॉर्न को धोकर अच्छी तरह से साफ कर लें। बेसन में नमक, मिर्च, गरम मसाला, पीसी हुई लहसुन एवं पानी डालकर घोल बना लें। बेबीकॉर्न को साबुत ही इस घोल में डाल दें। कढ़ाई में तेल गरम करें और बेसन में डूबी हुई बेबीकॉर्न को सुनहरा होने तक तल लें। कढ़ाही से पकौड़ा को निकाल कर खाली कागज पर रखें ताकि फालतू तेल निकल जाए। अब इन्हें चटनी या साँस के साथ खाएं।

8) बेबीकॉर्न की खीर

सामग्री :–

बेबीकॉर्न	: 250 ग्राम	दूध	: 1 लीटर
चीनी	: 200 ग्राम	बादाम, पिस्ता	: 100 ग्राम (कतरा हुआ)
इलायची पाउडर	: चुटकी भर		

विधि :– बेबीकॉर्न को धोकर कद्दूकस कर लें। दूध को आंच पर चढ़ाकर उबाल आने तक पकाएं। पिसे

बेबीकॉर्न को उबले हुए दूध में डालकर तब तक पकाएं जब तक कि दूध गाढ़ा न हो जाए। अब इसमें चीनी डालकर अच्छी तरह मिलाएं और थोड़े पकने पर आँच से उतार लें। अब कटे हुए मेवे डालकर खीर को सजाएं।

9) बेबीकॉर्न लड्डू

सामग्री :–

बेबीकॉर्न	: 100 ग्राम	बेसन	: 200 ग्राम
सफेद तिल	: 50 ग्राम	पीसी चीनी	: 300 ग्राम
घी	: 300 ग्राम	कटा हुआ मेवा	: 100 ग्राम
इलायची पाउडर	: आधा चम्मच		

विधि :– बेसन और कद्दूकस किए हुए बेबीकॉर्न को घी में अलग–अलग सुनहरा होने तक धीमी आंच पर भूनें। आंच से उतार लें। अब भुना हुआ तिल, बेसन, बेबीकॉर्न, पिसी चीनी एवं मेवों को एक साथ मिला दें और इलायची पाउडर मिलाकर लड्डू बना लें।

10) बेबीकॉर्न का हलवा

सामग्री :–

बेबीकॉर्न	: 150 ग्राम	चीनी	: 150 ग्राम
घी	: 75 ग्राम	बादाम, पिस्ता, काजू	: 50 ग्राम
खोया	: 100 ग्राम		

विधि :– बेबीकॉर्न को धोकर थोड़ा पानी डालकर मिक्सी में पीस लें। घी को गर्म करके इसमें पिसी बेबीकॉर्न को डालकर मध्यम आंच पर गलने तक पकाएं। ध्यान रहे कि सारा पानी सूख जाए एवं बेबीकॉर्न अच्छे से सुनहरा हो जाए। अब इसमें खोया डालकर अच्छी तरह मिलाकर धीमी आंच पर तब तक पकाएं जब तक कि ये मिश्रण बर्तन का किनारा छोड़ ना दे। आंच से उतार कर इसमें इलायची पाउडर, बारीक कटा मेवा डालकर, सजा कर परोसें।

हम बदलाव की शुरुआत अपने घरों,
आस-पड़ोस की जगहों, बस्तीयों, गावों, और स्कूलों से कर सकते हैं।

– किरण बेदी

मुर्गीपालन से आर्थिक आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते दो कदम

डॉ. सुनीता कुशवाह, डॉ. धर्मेन्द्र कुमार एवं डा. एस. के. मंडल

कृषि विज्ञान केन्द्र, बाँका

बिहार में मुर्गी पालन का व्यवसाय किसानो, ग्रामीण महिलाओं, बेरोजगार नवयुवको के बीच काफी लोकप्रिय हो रहा है। बिहार के कोसी क्षेत्र में मुर्गी पालन कुछ समुदाय विशेष (आदिवासी, दलित एवं मुसलिम) के लोगों तक ही सीमित है। यह लोग भी मुर्गी पालन व्यवसायिक दृष्टिकोण से नहीं करते हैं। कोसी क्षेत्र के अधिकतर भाग में कई नदियों के कारण इस क्षेत्र को प्रत्येक वर्ष बाढ़ की विभीषिका का सामना करना पड़ता है, जिससे फसलों का नुकसान हो जाता है। रोजगार के लिए इस क्षेत्र के लोग अन्य राज्यों में पलायन कर जाते हैं। घर की महिलाएँ मजदूरी करके अपने परिवार का भरण पोषण करती हैं। मुर्गीपालन के द्वारा क्षेत्र के किसानो, ग्रामीण महिलाओं, बेरोजगार नवयुवको को रोजगार के अवसर गॉव में ही उपलब्ध हो सकता है और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है । इसको ग्राम– सकरैली प्रखण्ड– बरारी जिला कटिहार के किसानो, ग्रामीण महिलाओं, बेरोजगार नवयुवको ने चरितार्थ किया है ।

गांव को चयनित करने का कारण

कृषि विज्ञान केन्द्र, कटिहार से 32 कि0मी0 दूर एक गाँव –सकरैली, पंचायत– सकरैली, प्रखंड –वरारी में अवस्थित है। इस गाँव में मुख्यतः पिछड़ी जाति, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के ग्रामीण रहते हैं। वहाँ की महिलाओं की स्थिति बहुत खराब थी, क्योंकि वहाँ के किसानों के पास जमीन नहीं थी या बहुत कम थी एवं रोजगार का अभाव था। गाँव की बहुतायत महिलाएँ केला बागान में प्रतिदिन मजदूरी के आधार पर कार्य करती थी, जिनकी प्रति माह की औसत आय 1000 रू0 थी। वहाँ की स्थिति को देखकर उनकी जीविका की वृद्धि करने के लिए बहुत सी समस्याएँ प्रभावित करती थी। इसलिए निम्नलिखित बिन्दु उस समाज की वृद्धि के लिए और वस्तुस्थिति के लिए चुनौती थे, जो निम्नवत है –

1. अशिक्षा
2. गरीबी
3. भूमिहीन मजदूर महिलाओं का अशिक्षित व गरीब होना।

4. बाजारीकरण का अभाव।
5. जिला मुख्यालय से दूरी अधिक होना।
6. ग्रामीण रहन–सहन के सुधार के लिए कुछ अलग करने की आवश्यकता।

परियोजना का उद्देश्य

1. ग्रामीणों, गरीब महिलाओं व नौजवानों के रहन–सहन का स्तर ऊंचा करना।
2. महिलाओं को उनके महत्व एवं सशक्तीकरण पर बल।
3. ग्रामीण परिवेश में रोजगार उत्पन्न करना।

सामाजिक व आर्थिक उद्देश्य

ग्रामीण परिवेश के आधार पर गाँव में सभी ग्रामीण किसान गरीब थे और जमीन न होने के कारण उनके आय का कोई श्रोत नहीं था तथा उनके घर में महिलाएँ और 4–5 बच्चे थे, जिससे बेरोजगारी होना लाजमी था। ग्रामीण पुरूष अपने घर का खर्चा चलाने के लिए पूरे परिवार को छोड़कर दूसरे प्रदेश चले जाते थे, जिससे महिलाओं के पास घर चलाने के लिए कोई पैसा नहीं होता था, जिससे उनके परिवार का खर्च चल सके। अन्ततः महिलाएँ पूर्ण रूपेण पुरूष पर निर्भर रहती थी, जिससे बच्चे कुपोषण का शिकार हो जाते थे। ग्रामीण महिलाएँ अपने गाँव में गरीबी को झेलते हुए एक छोटे से कच्चे घर में रहती थी और उनकी दशा बहुत दयनीय थी। मुर्गीपालन अपनाने के बाद उनके घर का खर्च चलने लगा, जिससे उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति अच्छी होने लगी।

तकनीकी उद्देश्य

- तकनीकी को दूसरों के बीच प्रचारित करना
- मुर्गी पालन को व्यवसायिक दृष्टिकोण से आगे बढ.ाना
- ब्रायलर उत्पादन शुरू करना।
- पुरानी किस्म की मुर्गियों को हटाकर नयी मुर्गियों का उत्पादन नवीनतम तकनीकि से करना।
- नयी तकनीकों को बढ़ावा देना, जैसे– धान का सघनीकरण, उर्वरक का सही उपयोग तथा मुर्गियों का सही राशन एवं रखरखाव।

परियोजना को चलाने के महत्वपूर्ण तथ्य

भ्रमण :– ग्रामीणों के जरूरत व मांग के आधार पर केन्द्र की कार्यक्रम समन्वयक एवं समस्त वैज्ञानिक गाँव में जाकर वहाँ उनके परिवेश में परिवर्तन लाने और वृद्धि करने के लिए कुछ परियोजना/तकनीक चलाने की जरूरत को देखे, जिससे उनके रहन–सहन में परिवर्तन आ सके।

गॉव का सर्वे – उस गाँव की यथास्थिति जानने के लिए सर्वप्रथम सर्वे किया गया। इस सर्वे के दौरान केन्द्र के कार्यक्रम समन्वयक एवं समस्त वैज्ञानिक गाँव में जाकर वहाँ के निवासियों से पूछताछ की एवं प्रश्नावली के माध्यम से पूर्व व वर्तमान स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त हो सकी।

प्रगतिशील किसानों का चयन – मुर्गी पालन करने के लिए सर्वप्रथम श्री अशोक कुमार साह को चयनित किया गया और उनको मुर्गी पालन के लिए प्रशिक्षित किया गया।

गॉव को अगींकृत करना– वर्ष 2011 में सकरैली गॉव को कृषि विज्ञान केन्द्र, कटिहार के द्वारा गोद लिया गया।

परियोजना को सफल बनाने हेतु बनाई गयी रणनीति

कृषि विज्ञान केन्द्र कटिहार की कार्यक्रम समन्वयक ने तत्कालीन सभी परिस्थितियों एवं समस्याओं को देखते हुए एक किसान श्री अशोक कुमार साह को कहा कि आप के पास पहले से एक मुर्गी फार्म है, परन्तु कुछ समस्याओं के चलते नहीं चला पा रहे हैं तो आप मुर्गी फार्म शुरू कीजिए जो भी समस्या आयेगी, आपकी परेशानी को दूर करने के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र कटिहार के द्वारा प्राथमिकता दी जायेगी। अशोक कुमार साह ने कृषि विज्ञान केन्द्र, कटिहार के मार्गदर्शन में मुर्गी फार्म शुरू किया, परन्तु उनके सम्पर्क में कोई पोल्ट्री विशेषज्ञ नहीं था, तब दूरभाष के द्वारा परेशानी को हल करने के लिए आई. वी. आर. आई, इज्जतनगर (बरेली), गोविन्द बल्लभ पंत कृषि विश्वविध्यालय (पन्तनगर), बिहार कृषि विश्वविधालय, सबौर (भागलपुर) से समय–समय पर विशेषज्ञ से बात करके समस्या को हल किया और मुर्गी फार्म को आगे बढ़ाने के लिए एवं समस्याओं को दूर करने के लिए बिहार सरकार के द्वारा विशेषज्ञ से सलाह ली गई।

परियोजना का प्रभाव

ज्ञान – इस परियोजना के तहत ग्रामीण किसानों, जो कि मुर्गी पालन कर रहे हैं उन्होंने अच्छी तरह ज्ञान ले लिया है कि –

- राशन कैसे, कब और कितना देना है।
- वैक्सीन क्यों देना है और कब देना है।
- टीकाकरण का क्या महत्व है।
- मुर्गी की उन्नतशील प्रजातियाँ और उनका रख–रखाव आदि।

दक्षता

- किसानों के द्वारा टीकाकरण किया जा रहा है।
- अच्छी गुणवत्ता के लिए अधिक प्रयासरत है।
- ब्रायलर उत्पादन की नवीनतम तकनीक अपना रहे हैं।

- सोच/विचार
- उनके विचार उत्तम व अति सरल है।
- बहुतायत समय मुर्गी पालन में बिता रहे हैं।

परियोजना से षुद्ध लाभ

सकरैली गाँव की 1200 परिवारों में से आज 450 परिवार वैकयार्ड मुर्गी पालन व 28 परिवार ब्रायलर उत्पादन कर रहे हैं। आज 672 महिलाएँ व नवयुवक मुर्गी पालन में व्यस्त हैं और आय प्राप्त कर रहे हैं। ग्रामीण परिवेश के जीवनयापन में मुर्गी पालन के जरिये सुधार आ गया है मुख्यतः मुस्लिम, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के व्यक्ति इस परियोजना का सीधा लाभ उठा रहे हैं।

वर्ष 2010–2013 तक मुर्गी पालक किसानों की बढ़ोतरी एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों की संख्या एवं प्रतिशत (मुर्गी की प्रजाति– वनराजा एवं ब्रायलर)

वर्ष	ब्रायलर इकाई/1200 घर	वैकयार्ड मुर्गी इकाई/1200 घर	ब्रायलर अंगीकृत दर	बैकयार्ड अंगीकृत दर	प्रशिक्षित किसानो, ग्रामीण महिलाओं, बेरोजगार नवयुवको की संख्या/2600	प्रशिक्षित किसानो, ग्रामीण महिलाओं, बेरोजगार नवयुवको की संख्या
2010	0	200	0	16.67	0	0
2011	1	200	0.08	16.67	1	0.04
2012	7	250	0.58	20.83	56	2.16
2013	28	450	2.33	37.5	467	18.73

उत्पादन, उत्पादकता, लाभ व स्थिरता पर परियोजना का प्रभाव

उत्पादन – जो किसान ब्रायलर उत्पादन करते हैं, वह मुर्गी का बच्चा या तो प्राईवेट एजेंट से खरीदते हैं या फिर बिहार कृषि विश्वविद्यालय से खरीदते हैं। कृषि विज्ञान केन्द्र कटिहार के सहयोग से सर्वप्रथम सकरैली गाँव में अशोक कुमार साह के यहाँ मुर्गी फार्म खोला गया और उनको तकनीकी सहयोग विशेषज्ञों के द्वारा (पन्तनगर, इज्जतनगर, सबौर) दिया जाता था।

उत्पादकता/लाभ (खर्च का विवरण/यूनिट)

विभिन्न कार्य एवं उनकी रुपरेखा	संख्या/ आमदनी (रु) में
ब्रायलर की संख्या	500
1 बैच तैयार होने का समय	40 दिन
1 वयस्क मुर्गी का बाजार मूल्य	150 रू0/मुर्गी
1 वयस्क मुर्गी का खर्च	85 रू0/मुर्गी
शुद्ध लाभ (रू0/मुर्गी पर)	45 रू0/मुर्गी
मृत्यु दर	5 प्रतिशत
कुल मुर्गी विक्रय के लिए	475
कुल आय	71,250
कुल खर्च	40,375
शुद्ध लाभ	30,875
1 साल में तैयार होते बैच की संख्या	8
सलाना आय – 30875×8	2,47,000

उपलब्ध संसाधनों में स्थिरता

मुर्गी पालन के दौरान गाँव की जीविका का स्तर बढ़ने लगा और ब्रायलर उत्पादन से मुर्गी पालकों को अच्छा लाभ प्राप्त होने लगा, जिससे मुर्गी पालकों में अत्यधिक मुर्गी उत्पादन का साहस हो गया और धीरे–धीरे मुर्गी पालकों की सुख्या बढ़ने लगी। मुर्गी पालन में ब्रायलर की संख्या लगातार बढ़ाने से शुद्ध आय प्राप्त होती है।

परियोजना का अन्य ग्रामीणों पर प्रभाव

जब श्री अशोक कुमार साह ने मुर्गी पालन शुरू किया, तब बहुत से ग्रामीण मुर्गी पालन के नियम को नहीं जानते थे। कृषि विज्ञान केन्द्र ने श्री साह को प्रशिक्षण के रूप में तैयार कर दिया था और ग्रामीणों के लिए वह एक कुशल प्रशिक्षक का कार्य करते थे। सर्वप्रथम अशोक कुमार साह ने अपने घर पर मुर्गी पालन करना शुरू किया और कृषि विज्ञान केन्द्र के कार्यक्रम समन्वयक के सहयोग से उनको विशेषज्ञों के द्वारा नयी–नयी जानकारियाँ प्राप्त होती रही और उनको मुर्गी प्रबंधन के बारे में भी जानकारी मिलती रही, जिससे उन्होंने अन्ततः अच्छी मुर्गियाँ बिक्री के लिए तैयार करने लगे। बिक्री से अच्छा लाभ मिला, जिससे ग्रामीण महिलाएँ भी सशक्त हुई और मुर्गी पालन इकाई चलाना शुरू कर दिया और इस दशा को देखते हुए धीरे–धीरे सभी ग्रामीणों ने मुर्गी पालन करना शुरू कर दिया और कृषि विज्ञान

केन्द्र से समय–समय पर प्रशिक्षण लेकर परियोजना को आगे बढ़ाने में मदद की और अभी सभी किसान खुशहाल हैं।

परियोजना को लागू करने में आयी कठिनाइयॉं

1. मूल्य का अभाव – गाँव के सभी किसान गरीब थे और उनके पास पर्याप्त धन नहीं था कि वह बड़े स्तर पर मुर्गी पालन का कार्य कर सके और वह इतने सक्षम नहीं थे कि उनको कोई बैंक मुर्गी पालन करने के लिए लोन दे देती।

2. अशिक्षा – 70 प्रतिशत से अधिक महिलाएँ अशिक्षित थी, जिससे कोई भी तकनीकी बात को बताना और उनको सफल बनाना इन सब के बीच दुर्लभ था।

3. क्षति – गरीब किसानों के बीच में क्षति धारण करने की क्षमता कम होती है, क्योंकि लगभग किसान भूमिहीन होते हैं, जिससे वह नयी तकनीकी को अपनाने से दूर हटते हैं।

4. गरीबी – यह भी एक बहुत बड़ी चुनौती है। यदि ग्रामीण गरीब हो और अशिक्षित हो तो तकनीकों का प्रसारण एक बहुत बड़ी समस्या है।

5. हैचरी मशीन का अभाव – वनराजा एक किस्म है, जिसके अण्डे से बच्चे निकालने के लिए हैचरी मशीन की जरूरत होती है जो अपने आप में एक बहुत बड़ी चुनौती है।

6. बाजार का अभाव– शुरुआती क्रम में बाजार की व्यवस्था एक चुनौती है।

निराकरण

1. ऋण की उपलब्धता –किसानों के लिए मूल्य/रूपया एक बहुत बड़ी चुनौती थी। पहले उन्होने कर्ज लेकर कार्य करना प्रारम्भ किया और पहली बार की हुई शुद्ध लाभ के बाद वह उसी आय से कार्य शुरू किए।

2. मास्टर ट्रेनर को तैयार करना–मास्टर ट्रेनर के तौर पर श्री अशोक कुमार साह को मुर्गी पालन पर ग्रामीणों को प्रशिक्षण देने व उनके परियोजना की देखभाल करने के लिए प्रशिक्षित किया गया।

3. विशेषज्ञ/डॉक्टर की उपलब्धता– समय–समय पर मुर्गियों में दवा, टीकाकरण व उनकी देखभाल से क्षति होने की संभावना कम रहती है और समय–समय पर विशेषज्ञ/डॉक्टर के द्वारा देखभाल करवाने से क्षति कम हुई।

4. उचित तकनीकि का चयन– गाँव की बहुतायत जनसंख्या गरीब हो और इनमें अन्य पिछड़ी जाति, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोग निवास करते हैं। गरीबी की वजह से गाँव में यह तकनीकी सबसे अच्छी और बेहतर थी। अच्छी व अधिक आय के लिए यह तकनीक सबसे उत्तम है। वस्तुस्थिति को देखते हुए इसके अलावा अन्य कोई तकनीक का प्रभावशाली होना उपयुक्त नहीं था

क्योंकि यह व्यवसाय मात्र 40 दिनों में अपनी पूरी क्रियाकलाप करके अच्छा लाभ देती है।

5. तकनीकी का सुधार – पुरानी किस्मों को हटाकर नयी किस्मों का उत्पादन करना ही बेहतर होता है। जैसे– वनराजा और ग्रामप्रिया, जिनकी अण्डा देने की क्षमता देशी मुर्गियों से काफी अधिक है। इसका उत्पादन करके तकनीकी में सुधार किया गया।

6. बाजार की उपलब्धता– श्शुरु में बाजार एक बड़ी समस्या थी, परन्तु बाद में किसानों के बीच एक माडॅल को विकसित किया गया। सभी किसान एक साथ चूजा न डालकर 5 दिन के अन्तराल पर चूजा डालते थे, इससे एक साथ मुर्गी तैयार न होकर कुछ अन्तराल पर तैयार होता था। चूजा डालने की तिथि श्री अशेक कुमार साह के पास लिखवा दी जाती थी और श्री साह मुर्गी का बैच तैयार होने पर सभी ग्राहकों को मोबाइल के माध्यम से मूल्य की एवं तैयार होने की लिखित सूचना दे देते थे। इसप्रकार से सभी मुर्गीपालकों को अच्छा लाभ प्राप्त हो जाता था। बाद में इस कार्यक्रम की प्रसिद्धि से प्राइवेट कम्पनी एवं खरीदार गॉव पहुॅच गए और बाजार की समस्या का निराकरण हो गया।

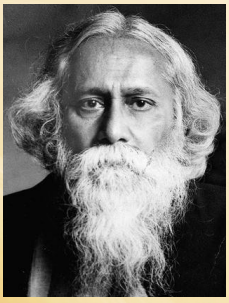

पंखुडियां तोड़कर आप फूलकी खूबसूरती नहीं इकट्ठा करते।

– रबीन्द्रनाथ टौगोर

कटाई उपरांत मशरुम का उचित प्रबंधन एवं परिरक्षण

डॉ. नन्दना कुमारी
कृषि विज्ञान केन्द्र, बोकारो

परिचय

पूरे झारखंड प्रदेश में मशरुम एक लोकप्रिय खाद्य पदार्थ के रुप में मशहूर है। खास तौर से, बरसात के मौसम में जंगलों में प्राकृतिक रुप से उगे मशरुम (जो खुखड़ी के नाम से जाना जाता है) को यहाँ के लोग बहुत पसंद करते हैं एवं बड़े स्वाद से खाते हैं। क्योंकि मशरुम की खेती कृषि, वानिकी एवं पशुओं के अवशेषों पर की जाती है। यहाँ के किसान उत्पादन हेतु बेकार एवं बंजर भूमि का उपयोग मशरुम के उत्पादन में करते हैं। इस तरह से मशरुम उत्पादन यहाँ के किसानों एवं बेरोजगार नवयुवकों के लिए एक सार्थक आय का माध्यम है। यहाँ तक कि ग्रामीण गृहिणीयाँ भी इसमें विशेष रुप से अपना योगदान करती हैं।

ओएस्टर मषरूम

मशरुम एक बहुपयोगी खाद्य पदार्थ

मशरुम बहुपयोगी खाद्य पदार्थ है। एक ओर तो मशरुम में ऐसे गुणकारी तत्व हैं जो कुपोशण को दूर भगाने में अहम भूमिका निभा सकते हैं। दूसरी ओर, यह मोटापा, उच्च रक्तचाप, मधुमेह एवं हृदय रोग से ग्रसित रोगियों के लिए वरदान स्वरूप है। इसके नियमित सेवन से शरीर की रोग प्रतिरोधात्मक क्षमता बढ़ती है।

मशरुम पौष्टिक तत्वों से भरपूर होने के कारण, विशेष रुप से प्रोटीन का उत्तम स्त्रोत होने की वजह से इसे शाकाहारियों का माँस कहा जाता है। इसमें उत्तम प्रोटीन के साथ–साथ खणिज लवणों की प्रचूर मात्रा एवं कम वसा के होने के कारण, यह हृदय रोग एवं गुर्दे संबंधी रोग से लड़ने में हमारी मदद करता है। इसलिए न सिर्फ मशरुम के व्यावसायिक उत्पादन को प्रोत्साहन मिलना चाहिए, बल्कि हमारे ग्रामीण किसान भाई एवं बहनों को कटाई उपरांत लंबे समय तक इसे सुरक्षित रखने के लिए उचित प्रबंधन एवं परिरक्षण करना भी आना चाहिए।

विभिन्न प्रकार के मशरुम का पोषण मान

मशरुम के प्रकार पोषक तत्व	सफेद बटन मशरुम	ओएस्टर मशरूम	पैरा मशरूम
जल (प्रतिशत)	78.3–90.5	90.1	90.1
प्रोटीन (प्रतिशत)	23.9–34.8	6.6–37.2	21.2–43.0
वसा (प्रतिशत)	1.7–1.8	2.0	10.1
कार्बोहाइड्रेट (प्रतिशत)	51.3–65.5	50.7	58.6
रेषा (प्रतिशत)	8.0–10.4	13.3	11.1
राख (प्रतिशत)	7.7–12.2	6.5	10.1
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	328–368	300	369

मशरुम में उपलब्ध पोषक तत्व की विशेषताएँ

1. प्रोटीन– मशरुम में विभिन्न सब्जियों, फलों तथा दूध से भी अधिक प्रोटीन पाया जाता है। मशरुम में सभी आवश्यक अमीनो अम्ल पाए जाते हैं। मशरुम का प्रोटीन मानव शरीर द्वारा आसानी से अवशोषित कर लिया जाता है।

2. वसा– मशरुम में वसा बहुत कम मात्रा में होता है। मशरुम में लिनोलेनिक अम्ल प्रचुर मात्रा में उपलबध होता है। मशरुम में कम उर्जा, कार्बोहाइड्रेट एवं वसा होने के कारण इसे स्लिमिंग डाइट भी कहते हैं।

3. खणिज लवण– मशरुम में खणिज लवण माँस–मछली से ज्यादा होता है। पोटेशियम, फॉस्फोरस, कैल्शियम तथा मैग्निशियम मुख्य रुप से पाए जाते हैं। मशरुम में कॉपर, जिंक, लोहा, मैंगनीज, मॉलिब्डिनम और कैडमियम भी उपलबध होते हैं।

4. विटामिन– मशरुम विटामिनों का अच्छा स्त्रोत है। थायमिन (बी–1), राइबोफ्लेविन (बी–2), नियासिन (बी–4), बायोटिन एवं विटामिन सी पाया जाता है। मशरुम में उपलब्ध विटामिन पकाने एवं सुखाने से नष्ट नहीं होता है। सभी मौजूद आवश्यक पोषक तत्वों की प्रचुरता के कारण मशरुम एक आदर्श खाद्य पदार्थ के रुप में बहुत मशहूर हो रहा है।

मशरुम का औषधीय गुणः

मशरुम की महत्ता चिकित्सा क्षेत्र में दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। मशरुम की विभिन्न प्रजातियाँ औशधीय गुणों से भरपूर है। रक्त अल्पता एवं गुर्दे के रोगियों के लिए यह अति लाभदायक है। मशरुम से चर्मरोग, कब्ज, आर्थराइटिस (जोड़ों में सूजन एवं दर्द) तथा कैंसर रोगों आदि के उपचार के लिए औषधि बनाई गई है। मशरुम, गठिया, माइग्रेन एवं सिरदर्द इत्यादि व्याधियों में भी प्रभावी पाया गया है।

पिछले कुछ वर्षों से मशरुम के उत्पादन में लगातार वृद्धि होरही है। इनके व्यावसायिक उत्पादन के प्रति लोगों का झुकाव बढ़ रहा है। ताजा मशरुम के विनाशशील स्वभाव के कारण इसे अधिक समय तक नहीं रखा जा सकता है। कुछ हद तक ही घरेलू खपत के लिए ताजा मशरुम का विक्रय संभव है। आज भी झारखंड प्रदेश में मशरुम के लिए संतोशप्रद विपणन प्रणाली का विकास नहीं हो पाया है। झारखण्ड राज्य के ग्रामीण किसान, बेरोजगार युवा एवं युवतियाँ तथा भूमिहीन मजदूर जितनी मेहनत से मशरूम का उत्पादन करते हैं, उस अनुपात में उन्हें आर्थिक लाभ नहीं मिल पाता है, क्योंकि कटाई उपरांत आधारित संरचना की सुविधा की कमी के कारण मशरूम बड़ी मात्रा में बर्बाद हो जाता है। और इस प्रकार उपज का एक बड़ा हिस्सा मेहनत से उगाने के बावजूद भी अच्छी कीमत मिले बिना ही खराब हो जाता है। जिससे मजबूरन किसानों को उन्हें सस्ता बेचना पड़ता है। यहां के किसानों की आर्थिक स्थिति को देखते हुए ये क्षति असहनीय है। इसका मुख्य कारण किसानों में कटाई उपरांत मशरूम का उचित प्रबंधन एवं परिरक्षण संबंधी जानकारी की कमी है।

जाड़े के मौसम में मशरूम काफी मात्रा में पैदा होता है। तोड़ने के बाद भी मशरूम जीवित रहते हैं। इनमें श्वसन क्रिया और वाष्पोत्सर्जन क्रिया होती रहती है। रासायनिक और शारीरिक क्रिया में परिवर्तन होने से मशरूम में रोगों के आक्रमण से सड़न–गलन होती है। चूँकि मशरूम बहुत कोमल एवं नाजुक खाद्य पदार्थ है, इसलिए इन्हें खराब होने से बचाने के लिए सावधानी से तोड़ना और संरक्षित रखना काफी आवश्यक है। झारखंड के ग्रामीण किसान के पास मशरूम को लम्बे समय तक के लिए सुरक्षित भंडारण की सुविधा का अभाव होता है। ऐसी परिस्थिति में मशरूम को विभिन्न उपायों द्वारा अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। ये उपाय हैं– डिब्बाबंदी, बर्फ में जमाकर रखना, निर्जलीकरण, मशीनों द्वारा सुखाना, शीत गोदामों में रखना इत्यादि। परंतु ये सब उपाय महंगे पड़ते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि मशरूम को अधिक समय तक सुरक्षित रखने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के अनुरुप सरल व सस्ते उपाय अपनाए जाएं। यहाँ जाड़े के मौसम में अधिक मशरूम का उत्पादन होता हैं, ऐसे में मशरूम का परिरक्षण दीर्घकालीन अवधि के लिए करने की आवश्यकता है। जबकि बरसात के मौसम में अपेक्षाकृत कम मशरूम का उत्पादन होता है तो मशरूम का परिरक्षण अल्पकालीन अवधि के लिए करना सही कदम होगा, ताकि जरूरत के हिसाब से खुदरा बिक्री किया जा सके।

1. **अल्पकालीन अवधि के लिए मशरूम का परिरक्षण**
2. **दीर्घकालीन अवधि के लिए मशरूम का परिरक्षण**

1. अल्पकालीन अवधि के लिए मशरूम का परिरक्षणः– मशरूम को रसायनों में भिंगोकर रखना एवं मशरूम का अचारीकरण करना अल्पकालीन अवधि के लिए मशरूम को परिरक्षित किया जाता है।

क. मशरूम को रसायनों में भिंगोकर रखनाः– मशरूम को दो विधि से रसायन में भिंगोकर रखा जा सकता है।

विधिः 1. मशरूम को ब्लांच करके रासायनिक घोल (0.5 प्रतिशत सिट्रिक एसिड) में डुबोकर रखने से 8–10 दिन तक मशरूम को सुरक्षित रखा जा सकता है।

मशरूम को ब्लांच करना: ताजा एवं साफ मशरूम को उबलते पानी में 3–4 मिनट तक रखकर तुरंत ठंडे पानी में इन गर्म मशरूम को रख दें। ताकि उच्च तापमान का असर मशरूम में उचित समय तक के लिए हो। इस प्रक्रिया को ब्लांचिंग कहते हैं।

विधि: 2. रासायनिक घोल में भिंगोकर रखना:– मशरूम (Pleurotus sajorcaju) को रासायनिक घोल (नमक– 5 प्रतिशत, एसिटिक एसिड– 0.2 प्रतिशत तथा पोटैशियम मेटा बाइसल्फाईट 0.1 प्रतिशत) में डुबोकर काँच के मर्तबान में ढक्कन बंद करके रखने से 3 महीने तक मशरूम को सुरक्षित रखा जा सकता है।

ख. मशरूम का अचारीकरण: मशरूम का अचारीकरण (Pickling) करके 3–4 दिन तक इसे सुरक्षित रखा जा सकता है। सबसे पहले मशरूम को (पानी में 10 ग्राम नमक प्रति लीटर के हिसाब से मिलाया गया हो) उबलते पानी में 3–4 मिनट तक रखकर तुरंत उसे ठंडे पानी में डाल दें। फिर एक रायानिक घोल तैयार कर लें जिसमें मशरूम को 1 लीटर पानी में 1 ग्राम पोटैशियम मेटा बाइसल्फाइट, 1 ग्राम सिट्रिक एसिड तथा 5 मिली लीटर एसिटिक एसिड या 100 मिली लीटर सिरका मिलाकर काँच/ शीशे के मर्तबान/ जार में हवाबंद करके रखने से मशरूम को 3 से 4 दिन तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इस प्रक्रिया से मशरूम में खट्टापन आ जाता है। इसलिए इस मशरूम को उपयोग करने से पहले अच्छी तरह धो लें।

2. दीर्घकालीन अवधि के लिए मशरूम का परिरक्षण: मशरूम को दीर्घकालीन अवधि के लिए परिरक्षित करने की तीन विधियाँ हैं।

क. शुष्कण:– शुष्कण, खाद्य संसाधन की प्राचीनतम विधियों में से एक है। शुष्कण द्वारा मशरूम के अंदर पाये जाने वाले जल का निष्कासन किया जाता है। मशरूम को दोनों विधि, प्राकृतिक एवं यांत्रिक विधि से सुखाया जाता है। हमारे देश के जिन भागों में सालोंभर, खासतौर से जाड़े के महीने में खिली हुई अच्छी धूप उपलब्ध होती है। उन इलाकों में धूप में मशरूम को सुखाना काफी कम खर्चे वाला उपाय है। लेकिन, इस विधि से प्राप्त सुखा मशरूम की गुणवत्ता उतनी अच्छी नहीं होती है। इसलिये, मशरूम को यांत्रिक विधि से सुखाया जाता है।

यांत्रिक विधि से मशरूम को सुखाना:– मशरूम को यांत्रिक विधि से सूखाने से पहले ब्लांचिंग तथा सल्फीकरण (sulphuring/sulphiting) करना अतिआवश्यक है। ब्लांचड मशरूम को (या मशरूम के टुकड़े को) पोटैशियम मेटाबाइसल्फाइट (1 प्रतिशत) + साइट्रिक एसिड (0.2 प्रतिशत). चीनी (6 प्रतिशत). नमक (3 प्रतिशत) के घोल में 16 घंटे रखें। बीच–बीच में मशरूम को चलाते रहें ताकि एक जैसा सूखे। जब 10 किलोग्राम ताजा मशरूम को सुखाते हैं तो लगभग 1 किलोग्राम सुखा मशरूम प्राप्त होता है। इस विधि से सुखाये गये मशरूम पॉलीथीन पैकेट में 3 महीने तक तथा ऐल्युमिनीयम पैकिंग से 2 से 3 साल तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

ख. किण्वीकरण:– मशरूम को किण्वीकरण की विधि से कम से 6 महीने तक कमरे के तापमान पर सुरक्षित रखा जा सकता है।

ग. मशरूम का रासायनिक परिरक्षणः प्राकृतिक एवं यांत्रिक विधि से सुखाना, किण्वीकरण एवं रासायनिक परिरक्षण, दीर्घकालीन अवधि के लिए मशरूम के परिरक्षण के सरल और सस्ते तरीके हैं। इन उपायों का प्रयोग करके मशरूम को लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

इन उपायों द्वारा मशरूम को सुरक्षित रखने के अनेक लाभ हैं–

1. इन उपायों को अपनाने से मशरूम के पौश्टिक तत्वों की हानि होने से बचाया जा सकता है।
2. किसानों को मौसम के दौरान मजबूरन मशरूम को सस्ता नहीं बेचना पड़ेगा।
3. परिरक्षण लागत कम आने से उपभोक्ता को भी उचित दाम पर मशरूम उपलब्ध हो सकेगा।
4. मौसम नहीं होने पर भी इसका आनंद लिया जा सकता है।

मशरूम को लम्बे समय तक परिरक्षित रखने के लिए अनेक खाद्य रसायनों तथा रासायनिक घोलों का उपयोग किया जाता है। साधारण रसायन जैसे नमक, सिरका (या ग्लेसियल ऐसीटिक एसिड), पोटैशियम मेटा बाइसल्फाइट और सोडियम बेन्जोएट आसानी से बाजार में मिल जाते हैं। तथा महंगे भी नहीं हैं। घरेलू स्तर पर मशरूम को कांच या चीनी मिट्टी के जार में सुरक्षित रखा जा सकता है। लेकिन व्यावसायिक पैमाने पर उत्पादन के लिए बड़े आकार के लकड़ी के कुंड या कस कर बंद किये जा सकने वाले मोम चढ़े सीमेंट के टैंक प्रयोग में लाए जा सकते हैं। इस प्रकार मौसम के दौरान बड़े पैमाने पर भंडारित किया हुआ मशरूम मौसम खत्म हो जाने पर भी खुदरा बिक्री के लिए भेजे जा सकते हैं।

इस विधि के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. यह विधि बहुत सरल एवं सस्ती है।
2. इस पद्धति से मशरूम का आकार बिगड़ता नहीं है।
3. पोटेशियम मेटाबाइसल्फाइट, जिससे सल्फर डाइऑक्साइड प्राप्त होती है, जो मशरूम के विटामिनों तथा अन्य पौष्टिक तत्वों को सुरक्षित रखने में सहायता करता है।
4. रासायनिक घोलों द्वारा मशरूम को लगभग 6 महीने तक सुरक्षित रख सकते हैं।

विधिः–

मशरूम का चुनाव– परिरक्षण के लिए केवल ताजा एवं साफ मशरूम ही काम में लाना चाहिए। कटे–फटे एवं दाग–धब्बे वाले मशरूम प्रयोग नहीं करना चाहिए। उपयोग से पहले इन्हें साफ पानी से भली प्रकार धो लेना चाहिए।

रासायनिक घोल तैयार करना– रासायनिक घोल तैयार करने के लिए साफ एवं पीने योग्य पानी का ही इस्तेमाल करना चाहिए। सामान्यतः घोल की मात्रा मशरूम के तौल के डेढ़ गुनी या दुगुनी रखी जाती है। ताकि मशरूम घोल में पूरी तरह से डुबा हुआ रहना चाहिए। घोल बनाने के लिए स्टील के बर्त्तन का इस्तेमाल करें। घोल तैयार करने के लिए निम्नलिखित सामग्री की आवश्यकता है–

सामग्री

- पानी– कुल 1 लीटर (जिसमें 800मि०ली०पानी + 200मि०ली० सिरका हो)
- नमक– 30ग्राम
- पोटेशियम मेटा बाइसल्फाइट– 2 ग्राम
- ग्लेसियल ऐसीटिक एसिड– 8मि०ली० (या 200मि.ली. सिरका) जो उपर वर्णित पानी में मिलाना है।

मशरूम को काँच के जार में गर्दन तक भर कर उनमें तैयार किया गया घोल इतना डालें कि मशरूम उसमें भली प्रकार से डुब जाए। काँच या चीनी मिट्टी के मर्त्तबान या जार का ढक्कन कस कर बंद कर दें। ठंढे और अंधेरे स्थान पर सुरक्षित रख दें। इनको धूप में न रखें। भंडार गृह का तापमान कम ही रहे तो अच्छा रहता है। क्योंकि कम तापमान में परिरक्षित पदार्थ की पौश्टिकता व रंग सुरक्षित रहते हैं।

मशरूम के रासायनिक परिरक्षण के लिए निम्नलिखित सावधानियाँ बरतें

1. जिस बर्त्तन (काँच या चीनी मिट्टी) में मशरूम को परिरक्षित करना चाहें, उसे पहले गर्म पानी से अच्छी प्रकार धोकर धूप में सूखा लें तथा साफ एवं सूखे कपड़े से पोंछ लें।
2. मशरूम को उपयोग में लाने के लिए उन्हें मर्त्तबान से निकालने के बाद खाली जगह को ताजा घोल से भर दें तथा ढक्कन पुनः कस कर बंद कर दें। इससे बाकी बचे मशरूम घोल में डूबे रहेंगे।
3. परिरक्षित पदार्थ को धूप में न रखें।

विभिन्न पोशक तत्वों जैसे प्रोटीन, खणिज लवण एवं विटामिनों में धनी स्त्रोत एवं औषधिय गुणों से भरपूर होने के कारण, मशरूम का हमारे दैनिक आहार शैली में विशेष स्थान होना चाहिए। इसके नियमित सेवन से हमारे संपूर्ण स्वास्थ्य, षारीरिक एवं आर्थिक दोनों मजबूत होंगे। हमारे सभी ग्रामीण किसान भाईयों एवं बहनों के द्वारा मशरुम के उचित प्रबंधन एवं परिरक्षण करने के प्रयास से झारखंड प्रदेश की जनता के लिए पोषण सुरक्षा हासिल करने में एक कारगर उपाय होगा।

लोग अपने कर्तव्यों को भूल जाते हैं पर अधिकारों को याद रखते हैं।

– इंदिरा गाँधी

आम के रोग एवं कीटों का समेकित प्रबंधन

संजीत कुमार एवं डा. शम्भू राय

कृषि विज्ञान केन्द्र, शेखपुरा

अपने देश भारतवर्ष में आम उत्पादन पूरे विश्व में सार्वाधिक होता है लेकिन उत्पादकता काफी कम है। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि विभिन्न तरह के रोग वृक्ष तथा फसल को हरेक साल क्षति पहुँचाते है। साथ ही साथ तुड़ाई उपरांत होने वाले रोग से बिक्री एवं निर्यात प्रभावित होती है। नर्सरी से लेकर फल पकने एवं बिक्रय तक लगभग 100 से अधिक प्रकार के रोग कारक अपने देश में आम पर पाये जाते हैं। आम पर पाये जाने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण रोग एवं उसके पहचान के साथ–साथ उसके समेकित प्रबंधन हेतु माहवार किये जाने वाले उपाय तथा मंजर से फल पकने तक के प्रबंधन के उपाय इस पत्र में प्रस्तुत किया जा रहा है।

आम के महत्त्वपूर्ण रोग उसके जनक एवं उसकी स्थिति

रोग	रोगजनक के प्रकार	रोग का नाम	स्थिति
चूर्णी फफूंद (पावड्री मिल्डयू)	फफूंद	ओईडियम मैन्जीफेरी	खतरनाक
श्यामव्रण (एन्थ्रेक्नोज)	फफूंद	कोलिटोट्राइकम ग्लीयोस्पोरिआइडिस (ग्लोमेरेला सिंगुलाटा)	खरतनाक
कज्जली फफूंद (सूटी मोल्ड)	फफूंद	कई प्रकार के फफूंद	खतरनाक
उल्टा सूखा रोग (डाई बैक) तथा गोंद निकलना (गमोसिस)	फफूंद	बॉट्रीयोडिप्लोडिया थियोब्रोमी लेसियोडिप्लोडिया थियोब्रोमी	खतरनाक
गुम्मा रोग	फफूंद	फ्यूजेरियम सबग्लूटिनेन्स	सामान्य
फोमा ब्लाइट	फफूंद	फोमा गलोमेराटा	सामान्य
स्कैब	फफूंद	एलसिनाय/स्फेसीलोमा मैन्जीफेरी	सामान्य
जड़ सड़न रोग	फफूंद	राइजोक्टोनिया सौलेनी (थैनेटिफोरस कुकुमेरिस)	खतरनाक
जीवाणु कैंकर	जीवाणु	जेन्थोमोनास कम्पेस्ट्रिस पैथ वार मैन्जीफेरोइण्डिकी	सामान्य
लल रतुआ (रेड रस्ट)	फफूंद	सिफैल्यूरस वाइरेसेन्स	सामान्य
लाइकेन	––	स्ट्रगुला इलिगेन्स	सामान्य

आम के महत्वपूर्ण रोगों के पहचान एवं प्रबंधन

1. **चूर्णी फफूंद (पाउडरी मिल्डयू) :–** यह फफूंद आम के पत्तियों पर जीवित रहता है जो मंजर निकलने

तथा फूल खिलने की अवस्था में सक्रिय होकर अनुकूल वातावरण में मंजर पर सफेद घूसर रंग की मखमली सतह के रुप में दिखता है। इसके कारण मंजरों का सूखना, फूल एवं फलों का झड़ना शुरु हो जाता है। इसके प्रबंधन के लिए दिसंबवर–जनवरी माह में या मंजर निकलने के साथ ही कैराथेन या सल्फेक्स (0.2 प्रतिशत) का तीन छिड़काव 10–15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

2. **श्यामव्रण (एन्थ्रेक्नोज) रोग :–** इस रोग में नये पत्तों, टहनियों एवं फलों पर काली धंसी चित्तियां बनती है जिन पर सुई के नोंक के आकार के काले–काले कोयला के बुरादे की तरह धब्बे दिखते हैं। रोग की उग्र अवस्था में पत्तों तथा फलों का झड़ना तथा टहनियों का सूखना देखा जा सकता है। इसकी रोकथाम के लिए नये पत्तों एवं बढ़ते फलों पर क्लोरोथेलोनिल (कवच) या मेन्कोजेव (इन्डोफिल एम 45) नामक दवा के 0.25 प्रतिशत घोल का 2–3 छिड़काव करना चाहिए। रोग ग्रस्त टहनियों एवं झड़े पत्तों को जलाना लाभकारी होता है।

3. **कज्जली फफूंद (शूटी मोल्ड) :–** इस रोग के प्रभाव से पत्ते, टहनियाँ या फल काले फफूंद से ढ़क जाते हैं मधुआ या अन्य स्त्रावी कीटों के मधुस्त्राव पर इसकी बढ़वार होती है उग्रता की हालत में पत्तियों का प्रकाश संश्लेषण बाधित होता है तथा फलों की गुणवत्ता में खराबी के कारण आर्थिक क्षति होती है। उग्रता की स्थिति में व्यावसायिक स्टार्च या मांड या गोंद के 3 प्रतिशत घोल में 1.25 मि.ली. प्रति लीटर की दर से मोनोक्रोटोफॉस या डाइमेथोएट मिलाकर 15 दिनों के अंतराल पर 3 बार छिड़काव करें।

4. **टहनियों का सूखना (पिंक रोग) :–** इस फफूंद जनित रोग के कारण पूर्ण विकसित पेड़ों की टहनियां एक–एक करके सूखने लगती है। इसके नियंत्रण के लिए सूखी टहनियों को 15 से.मी. नीचे से छांटकर उसके कटे भाग पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का लेप लगाना चाहिए तथा इसी दवा के 0.3 प्रतिशत घोल का 2–3 छिड़काव पेड़ों पर करना चाहिए।

5. **उल्टा सूखा रोग (डाय बैक) :–** यह सबसे स्पष्ट रुप से अक्टूबर–नवम्बर माह में दिखता है जिसका मूख्य लक्षण टहनियों का ऊपर से नीचे की ओर सूखना है। खासतौर पर पूराने रोगग्रस्त पेड़ों में पत्ते आग से झुलसे हुए मालूम पड़ते हैं। शुरुआत में नई हरी टहनियों पर गहरे रंग के धब्बे बनते हैं जिसके बढ़ने से टहनियाँ सुखती है। प्रभावित टहनियों को लम्बाई से चिरने पर अंदर की उत्तक में भूरापन दिखता है शाखाएँ फटने लगती है जिससे पीला गोंद निकलता है और वह सूख जाती है। नर्सरी में कलम बंधन के स्थान प्रभावित होने पर पौधे मर जाते हैं। इसके प्रबंधन के लिए सूखे टहनी को 3 ईंच नीचे से कटाई करके उसपर कॉपर ऑक्सी क्लोराइड का लेप लगाना चाहिए तथा प्रतिवर्ष प्रति पेड़ की जड़ के चारो तरफ कॉपर सल्फेट 200–500 ग्राम का प्रयोग करना चाहिए।

6. **गोंद निकलना :–** यह रोग तने और शाखाओं पर प्रायः वर्षा ऋतु के बाद जाड़े में देखा जाता है। इस रोग में पेड़ के मुख्य तने शाखाओं और पेड़ों की छालों पर गोंद का रिसाव तथा दरार देखा जा सकता है। गोंद की बूंदो के रिसने से और दरारें पड़ने से पेड़ पूरी तरह से सूख जाता है इसके प्रबंधन के लिए रोगग्रस्त छाल या हिस्से को काटकर उसपर कॉपर ऑक्सी क्लोराइड का लेप लगाना

चाहिए तथा 15 वर्ष से ज्यादा उम्र के पेड़ों के लिए प्रतिवर्ष प्रति पेड़ की जड़ के चारो तरफ कॉपर सल्फेट 200–250 ग्राम का प्रयोग करना चाहिए।

7. **फोमा ब्लाइट :–** यह रोग आम की पुरानी पत्तियों पर अधिकतर पीले भूरे धब्बे के रुप में दिखता है। धब्बों पर गहरे भूरे रंग का किनारा होता है और मध्य भाग हल्के भूरे रंग का रहता है। रोगग्रस्त पत्तियाँ झड़ जाती है। इसके नियंत्रण के लिए बेनोमिल 0.2 प्रतिशत या कॉपर ऑक्सी क्लोराइड 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

8. **स्कैब :–** यह रोग पत्तियों, बौरों, टहनियों तनों की छाल और फल पर लगती है। ये धब्बे गोल कोणीय 3–4 मि.मी. के होते हैं। इस रोग के लक्षण एन्थ्रैक्नोज के लक्षण से काफी मिलते जुलते हैं पर ये धब्बे थोड़े छोटे होते हैं एवं सतह मखमली होती है। रोग के बढने पर पत्तियाँ मुरने लगती है और इनका आकार पूरी तरह बिगर जाता है। नई पत्तियों पर जो बड़े धब्बे बनते हैं वे स्लेटी रंग के होते हैं और इनका बाहरी किनारा पतला गहरा रंग लिये होता है। धब्बों का मध्य भाग सूखकर झड़ जाने से पत्तियों पर छेद बन जाता है। छोटे फलों पर संक्रमण स्लेटी भूरे रंग के रुप में दिखता है जो फल के साथ ही आकार में बड़ा होते जाता है और इसका मध्य भाग फटा सा उभरा हो जाता है। इस रोग से बचाव के लिए कॉपर आक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत का 10–15 दिनों पर छिड़काव करना चाहिए।

9. **जीवाणुज कैंकर :–** पत्तियों, टहनियों एवं फलों पर धब्बों का बनना तथा उस पर छोटे–छोटे चमकीले कणों का दिखना इस रोग का शुरुआती लक्षण है। उग्रता की हालत में फलों का झड़ना तथा टहनियों का सूखना देखा जा सकता है। इससे बचाव के लिए स्ट्रेप्टोमाइसिन के 200 पी.पी.एम. या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के 0.2 प्रतिशत घोल का 7 दिनों के अन्तराल पर 3–4 छिड़काव आवश्यक है।

आम के प्रमुख षत्रु कीट एवं उसका प्रबंधन

1. **सिल्ला कीट (शूट गॉल) –** यह कीट पत्तियों के निचली सतह पर मध्य शिरा के पास अंडे देती है जिससे अगस्त महीने में अति सूक्ष्म नवजात निकलकर फुनगी के पास पहुँचकर रस चूसते हैं जिससे नुकीली गांठ बनने लगता है इसी गांठ के अंदर वे छिपे रहते हैं। गांठ आरंभ में मंजर निकलने की भ्रांति पैदा करती है परंतु इसमें कीट रस चूसकर पौधे को क्षति पहुँचाता है। इसके रोकथाम के लिए 5–10 अगस्त के बीच शुरु करके क्वीनॉल्फास (0.04 प्रतिशत) का 10–15 दिनों के अंतराल पर 3 बार छिड़काव करना चाहिए। प्रभावित टहनियों एवं गांठों की छटाई लाभप्रद है। 2–3 बर्ष नियमित प्रबंधन से इस कीट से होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है।

2. **फुदका या मधुआ –** छालों के अंदर छिप कर रहने वाला यह कीट मंजर तथा नर्म टहनियों के रस चूसकर वृक्ष को सार्वाधिक नुकसान पहुँचाता है। उग्र स्थिति में मधुस्त्राव होता है जो पत्तों एवं फलों पर काली फफूंद को बढ़ावा देता है। मंजर सूखने से फूल–फल कम लगते हैं या झड़ जाते हैं। इसके प्रबंधन के लिए साइपरमेथ्रिन (2 मि.ली. प्रति ली.) या मोनोक्रोटोफॉस (1.5 मि.ली./ली.) दवा को पानी में घोलकर एक बार फूल खिलने से पहले तथा दो बार मटर आकार के फल लगने के

बाद छिड़काव करना चाहिए।

3. **मिली बग/गुजिया :–** फलों के निचली सतह, टहनियों तथा फलों पर रस वाली सफेद कीट समूह, कपासनुमा शरीर के कारण जल्दी ही दिख जाती है। उग्र स्थिति में टहनियां सूखने लगती है। इसके प्रबंधन के लिए क्विनॉल्फास 2 मि.ली. या मोनोक्रोटोफॉस 1.5 मि.ली प्रति लीटर पानी में घोल का मार्च–अप्रैल में छिड़काव करना चाहिए। जनवरी में तने के चारों ओर गुड़ाई एवं क्लोरोपाइरीफॉस या मिथाइल पाराथियान की 200 ग्राम धूल का भुरकाव अथवा तने पर पॉलीथीन की चादर की 30 से.मी. की पट्टी एवं ग्रीस लगाने से इसका निराकरण किया जा सकता है।

4. **फल मक्खी –** यह कच्चे फलों पर अंडे देकर क्षति करता है। परिपक्व फलों में इनके पिल्लुओं की उपस्थिति से सड़न शुरु हो जाती है। देर से पकने वाले किस्मों पर प्रकोप सार्वाधिक होता है। इसके प्रबंधन के लिए (1) गुड़ का शीरा या ताड़ी में 0.2 प्रतिशत कार्बेरिल मिलाकर खुले डिब्बों में पेड़ पर टांग दें जो व्यस्कों को अपनी ओर आकर्षित कर उसे मार देता है। (2) उग्रता की अवस्था में मोनोक्रोटोफॉस 1.5 मि.ली प्रतिलीटर पानी में घोलकर 2–3 छिड़काव 10 दिनों के अंतराल पर दोपहर के समय करना चाहिए।

5. **तना बेधक :–** कभी–कभी मोटी टहनियों या तने में बड़े आकार के पिल्लू तने के अंदर घुसकर भीतरी भाग को खाते हैं और उसी में अपनी विष्ठा भी निकालते हैं जिससे उनके पेड़ पर होने का संकेत मिलता है। इसके प्रकोप से या तो टहनियां सूख जाती हैं या टूट जाती है। इसके नियंत्रण के लिए नुवाक्रोन (10 मि.ली. प्रति लीटर पानी) के घोल या पेट्रोल की 2–3 बूंद जीवित छिद्र में डालकर टहनियों के सभी छिद्रों को गीली चिकनी मिट्टी से बंद कर देना चाहिए।

नोट :– फूल आते समय कीटनाशक दवा का प्रयोग न करें। क्योंकि मधुमक्खियों से परागण क्रिया तथा फलन प्रभावित होती है।

आम के विभिन्न रोगों एवं कीटों के समेकित प्रबंधन हेतु मासिक कार्यवाही : कब? क्यों? कैसे?

जनवरी

- पाले से बचाव हेतु बागों की सिंचाई।
- पाले से बचाव हेतु नए पौधों को फूस से ढ़कना तथा पूर्व दिशा से हवा तथा रोशनी हेतु थोड़ा हिस्सा खुला रखना।
- गुम्मा रोग नियंत्रण हेतु नई कलिकाओं को तोड़ना।
- बौर निकलने के समय : पुष्पगुच्छ मिज कीट रोकथाम हेतु डायमेथोएट 0.045 प्रतिशत या फेनिट्रोथियान 0.05 प्रतिशत या मोनोक्रोटोफास 0.04 प्रतिशत का छिड़काव आवश्यकतानुसार 15 दिन के अंतराल पर दो बार करना।
- गुजिया कीट नियंत्रण हेतु लगायी गयी पॉलीथीन पट्टी को समय–समय पर किसी कपड़े से साफ करना।

फरवरी

- पिछले वर्ष के गुम्मा बौर तथा खर्रा/दहिया प्रभावित पत्तियों को तोड़कर नष्ट करना
- खर्रा/दहिया रोग नियंत्रण हेतु प्रथम छिड़काव घुलनशील गंधक 80 प्रतिशत का 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी + तरल साबुन / 5 मि0ली0/लीटर जल के घोल का छिड़काव।
- भुनगा के प्रभाव होने पर कार्बेरिल 0.2 प्रतिशत या क्वीनालफास 0.05 प्रतिशत या क्लोरोपाइरीफॉस 0.04 प्रतिशत या डायमेथोएट 0.06 प्रतिशत का छिड़काव।
- मिज कीट प्रभावित बौर को काट कर नष्ट करना।
- गुजिया कीट हेतु लगायी गयी पॉलीथीन पट्टी को साफ करना तथा पट्टी के बीच खुली दरार को बन्द करना।

मार्च

- खर्रा/दहिया रोग नियंत्रण हेतु दुसरा छिड़काव (कैलेक्सीन) ट्राइडीमार्फ का 1 मि0ली0/लीटर पानी के घोल से फूल खिलने से पूर्व/पहले 1 खर्रा/दहिया रोग नियंत्रण हेतु तीसरा छिड़काव, डाइनोकैप (कैराथेन) 1 मि0ली या ट्राइडीमेफान (बेलेटान) 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल कर।
- आवश्यक होने पर भुनगा कीट नियंत्रण हेतु दुसरा छिड़काव।

अप्रैल

- ब्लासम ब्लाईट या एन्थ्रेक्नोज का प्रकोप होने पर कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रतिलीटर पानी में घोल का छिड़काव, साथ ही प्रभावित पत्तियों एवं टहनियों को तोड़कर जलाना ताकि रोगकारक की मात्रा कम हो सके।
- कलम बांधे गए पौधों की देखभाल करना तथा पत्ती काटने वाली सूड़ी नियंत्रण हेतु कार्बेरिल 0.2 प्रतिशत या मोनोक्रोटोफॉस 0.04 प्रतिशत का एक छिड़काव।
- फल मक्खी संख्या आकलन व नियंत्रण हेतु प्रति हेक्टेयर 10 यौनगंध ट्रैप (चौड़े मुह वाली शीशियों) में मिथाईल यूजिनॉल 0.1 प्रतिशत एवं मालाथियॉन 0.1 प्रतिशत को 100 मि0ली0 की दर से प्रति सप्ताह डालकर पेड़ों पर लटकाना।

मई

- कोयलिया या आंतरिक विगलन रोग नियंत्रण हेतु 1 प्रतिशत बोरेक्स का आवश्यकतानुसार 2–3 छिड़काव (नोट–बोरेक्स को गर्म पानी में घोलें)।
- तुड़ाई उपरांत रोगों से बचाव हेतु कार्बेन्डाजिम (वेभिस्टीन) या थायोफिनेट मिथाइल (टॉपसीन एम या रोको) का 1 मि0ली0 प्रति लीटर पानी में घोल का 2 छिड़काव।
- काली फफूंद का प्रकोप होने पर घुलनशील गंधक, मोनोक्रोटोफॉस तथा गोंद की (2 ग्राम, 0.54

मि0ली0 तथा 3 मि0ली0 क्रमशः) प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव अथवा इंडियन आयल फारमुलेशन का 3 प्रतिशत का छिड़काव।

- बैक्ट्रीरियल कैंकर की संभावना होने पर स्ट्रेप्टोसाइकिलन 200 पी0पी0एम का छिड़काव।
- खेत/बाग की सफाई तथा रोगग्रस्त टहनियों को काटकर जलाना।
- यौनगंध ट्रैप में फलमक्खियों की संख्या बढ़ते हुए पाये जाने पर हर सप्ताह ट्रैप में द्रव्य को बदलकर लटकाना।
- फल मक्खी नियंत्रण हेतु कार्बेरिल 0.2 प्रतिशत एवं गुड़ के शीरे या 0.1 प्रतिशत प्रोटीन हाइड्रोलाइजेट को मिलाकर प्रथम सप्ताह में मक्खियों के अंडे देने से पूर्व छिड़काव करना।

जून

- बैक्ट्रीरियल कैंकर का प्रकोप होने पर स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 200 पी0पी0एम का दुसरा छिड़काव।
- फलों को समय से तोड़ना।
- फलमक्खी से प्रभावित फलों को एकत्र कर नष्ट करना।
- फलमक्खी नियंत्रण हेतु यौनगन्ध ट्रैप से गन्ध द्रव्य को सप्ताहवार बदलना तथा एकत्रित मक्खियों को निकालकर फेंक देना।

जुलाई

- फल तुड़ाई समाप्ति के उपरांत रेड रस्ट तथा एन्थ्रेक्नोज रोग नियंत्रण हेतु कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का 0.3 प्रतिशत पानी में घोल का तीसरे या चौथे सप्ताह में छिड़काव।
- नर्सरी क्यारी में जड़ सड़न फफूँद रोकथाम हेतु मिट्टी को फारमेलिन 1 मि0ली0 प्रति लीटर पानी में घोल या ट्राइकोडर्मा 5 ग्राम या ब्लूकॉपर 5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल का छिड़काव द्वारा मृदा उपचार।
- गुठलियों को बाने से पूर्व थीरम या कैप्टान के 0.3 प्रतिशत घोल में 5 मिनट डुबोकर उपचारित करना।
- फलों को समय पर तोड़ना।
- दूसरे पखबाड़े में शल्क कीट के प्रभाव दिखने पर नियंत्रण हेतु डायमेथोएट 0.06 प्रतिशत या इमिडाक्लोप्रिड 0.05 प्रतिशत का छिड़काव दो बार करना।
- प्ररोह भेदक से प्रभावित प्ररोहों को काटकर कीड़े सहित नष्ट करना।
- प्ररोह भेदक एवं पत्ती काटने वाली सूड़ियों दोनों के नियंत्रण हेतु आवश्यकता होने पर कार्बेरिल 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करना।

अगस्त

- रेड रस्ट तथा एन्थ्रेक्नोज नियंत्रण हेतु दुसरा एवं तीसरा छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर।
- नर्सरी में जल निकास की समुचित व्यवस्था तथा मिट्टी को कैप्टान 0.3 प्रतिशत घोल से उपचार।

- बागों में खरपतवार की समुचित रोकथाम की व्यवस्था।
- सिला/शूट गाल कीट से प्रभवित बागों में 15 अगस्त के आसपास क्विनालफॉस 0.05 प्रतिशत या डायमेथोएट 0.06 प्रतिशत का पहला छिड़काव करना।
- जाला बनाने वाले कीट का प्रभाव दिखते ही प्रभावित टहनियों को काट कर नष्ट करना अधिक प्रभाव की दशा में कार्बेरिल 0.2 प्रतिशत या क्वीनॉलफॉस 0.05 प्रतिशत में से किसी दवा का छिड़काव।

सितम्बर

- रेड रस्ट या एन्थ्रेक्नोज का अधिक प्रकोप होने पर चौथा छिड़काव।
- शूट गाल सिला कीट नियंत्रण हेतु प्रथम छिड़काव के 15 दिन बाद दूसरा छिड़काव।

अक्टूबर

- डाईबैक रोग से ग्रस्त टहनियों को 2–3 इंच हरे हिस्से से काटना तथा कॉपर आक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव इससे फोमाब्लाइट रोग को भी नियंत्रण होगा।
- गोंद निकलने/गमोसिस रोग ग्रस्त पौधों की जड़ों के पास 200–400 ग्राम प्रति वृक्ष कॉपर सल्फेट का प्रयोग।
- गुम्मा रोग की रोकथाम के लिए नेपथिलिक एसिटिक एसिड 200 पी0पी0एम0 का छिड़काव दुसरे सप्ताह में।
- पौधों को आवश्यक पोषण।

नवम्बर

- डाईबैक तथा फोमा रोग के नियंत्रण हेतु दूसरा एवं तीसरा छिड़काव 25 दिनों के अंतराल पर।
- शूट गाल सिला एवं जाला बनाने वाले कीटों से प्रभावित शाखाओं की छंटाई कर उन्हें नष्ट करना।
- गुजिया, मिज व फल मक्खी कीटों की जमीन के अंदर रहने वाली अवस्थाओं को नष्ट करने हेतु बागों में पानी देना।
- बागों में गहरी जुताई करना व खर–पतवारों को नष्ट करना।

दिसम्बर

- पाला का प्रकोप हेतु बागों की सिंचाई तथा नए पौधों को फूस से ढ़कना।
- गुम्मा बौर की रोकथाम हेतु नई बौर कलिकाओं को तोड़ना।
- गुजिया कीट को पेड़ पर चढ़ने से रोकने हेतु दुसरे से तीसरे सप्ताह में पेड़ के तने के चारों ओर 25 से0मी0 चौड़ी, 400 गेज मोटी पालीथीन की पट्टी को लपेटकर सुतली से बांधना।
- यदि गुजिया की संख्या अधिक हो तो माह के अन्तिम सप्ताह में क्लोरोपाइरीफॉस चूर्ण (15 प्रतिशत) 250 ग्राम प्रति पेड़ की दर से तने के चारों ओर गुड़ाई कर मिट्टी में मिलाना एवं पॉलीथीन पट्टी के नीचे तने पर भी डालना।

* यदि गुजिया कीट पेड़ पर चढ़ चुकी हो तो कार्बेरिल 0.2 प्रतिशत या डायमेथोएट 0.06 प्रतिशत या इमिडाक्लोप्रिड 0.05 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना।
* छाल खाने वाले एवं तना भेदक कीटों के नियन्त्रण हेतु पहले जालों एवं छिद्रों को साफ करना फिर छिद्रों में डाइक्लोरोवास 0.05 प्रतिशत घोल डालकर मिट्टी से बंद करना।

नोट – क्षेत्र विशेष के अनुरुप लगने वाले रोग का आवश्यकतानुसार प्रबंधन करना सभी प्रबंधन क्रियाएँ आवश्यक नहीं।

आम के मंजर का बचाव

पहला छिड़काव – जब मंजर निकलना प्रारंभ हो जाए तब पहले छिड़काव के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. का 0.4 मि.ली. या डायमेथोएट 30 ई0सी0, 2 मि0ली0 या कार्बारिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 2 ग्राम के साथ एवं घुलनशील गंधक 80 प्रतिशत 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव इस प्रकार करना चाहिए ताकि मंजर एवं उसके नीचे की पत्तियों का दोनो सतह तथा डाली अच्छी प्रकार भींग जाए।

दूसरा छिड़काव – पहले छिड़काव के 20 से 25 दिनों बाद जब आधे मंजर झड़ जाए या फल सरसों के दाने के आकार का बन जाए तब दूसरा छिड़काव करना चाहिए। दूसरे छिड़काव में फोसालोन 35 ई.सी. 1.5 मि.ली. या क्वीनोलफॉस 25 ई0सी0 की 2 मि0ली0 मात्रा तथा कैलिक्सीन की 1 मि0ली0 मात्रा के साथ ही जिंक सल्फेट की 10 ग्राम मात्रा तथा नेप्थालिन एसीटीक एसिड (प्लानोफिक्स) की 0.2 मिली लीटर मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर प्रयोग करना चाहिए।

तीसरा छिड़काव – दूसरे छिड़काव से 15–20 दिनों के बाद जब फलों का आकार मटर के दाने से बड़ा हो जाए तब तीसरा छिड़काव के लिए कैराथेन 1 मि0ली0 या ट्रईडिमेफॉन 1 ग्राम, नेफ्थीलिन एसीटिक एसिड का 0.2 मि0ली0 तथा बोरेक्स पाउडर 8 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर करना चाहिए। अप्रैल माह में धब्बा रोग (एन्थ्रैक्नोज) नियंत्रण हेतु कार्बन्डाजिम 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण का 1 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

फल मक्खी से बचाव – फलमक्खी के प्रकोप का आकलन एवं नियंत्रण हेतु 100 मिली लीटर मिथाइल यूजीनॉल 0.1 प्रतिशत तथा मालाथियॉन 0.1 प्रतिशत के घोल का यौनगन्ध ट्रैप के रुप में 10 बोतल/हेक्टेयर लगाना चाहिए जिसमें घोल को प्रति सप्ताह बदलना चाहिए। फल मक्खी से बचाव के लिए मई माह के प्रथम सप्ताह में कार्बेरिल 0.2 प्रतिशत एवं गुड़ के शीरे को मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

कोइलया रोग या आंतरिक विगलन रोग से बचावः– इसके लिए 1 प्रतिशत बोरेक्स घोल का छिड़काव करना चाहिए।

तुड़ाई के उपरान्त लगने वाले रोगों से बचावः– इसके लिए कार्बेन्डाजिम या थायोफिनेट मिथाइल के 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव तुड़ाई के पूर्व करना चाहिए या तोड़े गए फलों को इस घोल में 30 मिनट तक डुबो कर पकने हेतु रखना चाहिए।

नालंदा जिले मे जैविक खेती द्वारा किसानों का सशक्तीकरण

संजीव कुमार

कृषि विज्ञान केन्द्र, नालंदा

नालंदा जिला के विभिन्न गांवों जैसे सोहडीह, आशानगर, बबुरबना इत्यादि में बड़े पैमाने पर विभिन्न फसलों की खेती खासकर सब्जी की खेती होते आ रही थी। परंतु उपरोक्त गॉवों में रसायनिक खाद कीटनाशी एवं फफुँदनाशी इत्यादि का उपयोग किसान बड़े पैमाने पर करते आ रहे थे। जिसके चलते सब्जी का लागत मुल्य बढ़ने के साथ साथ सब्जी की गुणवता भी प्रभावित हो रही थी। वर्श 2003 में उपरोक्त गॉवों का राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय के कीट विभाग मे आई0 सी0 ए0 आर0, नई दिल्ली द्वारा संपोषित नेटवर्क प्रोजेक्ट पेस्टीसाइड अवशेष जॉच प्रयोगशाला में सब्जी के नमुनों मे लगभग 65 प्रतिशत प्रदुषित पाया गया। जो उपभोक्ताओं के लिये भी अस्वस्थकर थी तथा सब्जी उत्पादकों का लाभ सीमित था।

उपरोक्त समस्याओं को ध्यान मे रखते हुए कृषि विज्ञान केंद्र हरनौत, के द्वारा सबसे पहले बिहारशरीफ के प्रखंड ग्राम सोहडीह, आशानगर के गाँवों को जैविक सब्जी उत्पादन के लिये चयन किया गया। इसके बाद सोहडीह, तथा समीपवर्ती गॉवों मे लगभग 265 किसानों को कृ0 वि0 के0, हरनौत के सहयोग से आत्मा नालंदा के द्वारा ''शेरे बिहार फामर्स'' ग्रुप के नाम से पंजीयन कराया गया। जिसमे कृषि विज्ञान केंद्र, हरनौत के द्वारा समुह के किसानों को जैविक खेती के विभिन्न पहलुओं की विभिन्न जानकारी दी गई। इसके अतिरिक्त समुह से जुड़े किसानों को कृषि विज्ञान केंद्र, हरनौत द्वारा वर्मी कंपोस्ट के उत्पादन तथा इसका प्रयोग का विस्तृत प्रशिक्षण दिया गया। साथ ही साथ कृषि विज्ञान केंद्र, ,द्वारा बिहार सरकार द्वारा प्रायोजित अनुमानित दर पर वर्मी कंपोस्ट इकाई का निमार्ण समुह से जुड़े किसानों को उपलब्ध कराया गया तथा खेती में इसका प्रयोग किया गया। लगभग 320 वर्मी कंपोस्ट इकाई कृषि विभाग के सहयोग से लगाया गया। जिसके चलते न केवल सब्जी की गुणवता में सुधार हुआ बल्कि सब्जी की सुरक्षा अवधि तथा मुल्य भी अधिक मिलने लगा। समुह से जुड़े किसानो को कृ0 वि0 के0, हरनौत के सहयोग से जैविक प्रमाणीकरण, एजेंसी ECOSERT के द्वारा जैविक खेती का प्रमाणिकरण स्तर C3 के रूप में वर्श 2013 मे किया गया। उपरोक्त समुह से जुड़े किसानो का जैविक प्रमाणीकरण के मिलने के उपरांत पटना बिहार सरकार, कृषि विभाग के द्वारा चार आउटलेट सब्जी विपणन हेतु दिया गया। इसके बाद उपरोक्त समुह के किसान ने केवल राज्य के अंदर, बल्कि राज्य के बाहर महाराष्ट्र, झारखंड, पश्चिमबंगाल मे अधिक मुल्य पर सब्जी भेजा जा रहा है। इसके अतिरिक्त मध्यपुर्व के देशों मे भी उपरोक्त समुह के सब्जियों की मांग के आधार पर आपुर्ति की जा रही है। इसीप्रकार कृषि विज्ञान केंद्र, हरनौत (नालंदा), के द्वारा जुनैदी, प्रेमनबिगहा, रामडीहा, सोहसराय, सरदारबिगहा, द्वारिकाबिगहा, जोरारपुर, कल्याणबिगहा, नेहुसा, छतियाना, मुढ़ारी, नगरनौसा, मीराचक, इत्यादि गाँवो मे भी कृषकों के समुह को जैविक खेती के विभिन्न पहलुओं पर प्रशिक्षण, प्रत्यक्षण, इत्यादि एवं जैविक खेती हेतु सरकारी योजनाओं का लाभ लेने के कारण आज नालंदा जिले मे जैविक खेती की क्षेत्रफल 4000 हे0 (चार हजार हेक्टेयर) मे पहुॅच गई है। इसप्रकार कृषि विज्ञान केंद्र, हरनौत अपने जिले के किसानो के उत्थान हेतु सतत् प्रयत्नशील है।

दुग्ध उत्पादन उद्योग का खगड़िया जिले के विकास में योगदान

ब्रजेंद्र कुमार

कृषि विज्ञान केन्द्र, खगड़िया

भूमिका

बिहार के सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 35 प्रतिशत योगदान कृषि क्षेत्र का है जिसमें एक चौथाई पशुपालन है। राज्य के अन्य जिले की तरह खगड़िया जिले की अधिकांश जनसंख्या 94.4 प्रतिशत जनसंख्या गॉव में रहती है जो समस्त बिहार के ग्रामीण जनसंख्या (88.69:) से अधिक है। जिले की ग्रामीण अर्थव्यस्था मुख्य रूप से कृषि एवं उससे सम्बद्ध क्षेत्रों जैसे फसल, पशुपालन, मत्स्यपालन इत्यादि पर निर्भर है। आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, बिहार के अनुसार प्राथमिक क्षेत्रों जिसमें कृषि, पशुपालन, मत्स्यपालन तथा वानिकी है, उनमें खगड़िया जिले के कृषि एवं पशुपालन क्षेत्र का सम्मिलित रूप से जिले के सकल घरेलू उत्पाद का 99 प्रतिशत योगदान है। कृषि की तुलना में पशुपालन तथा मत्स्यपालन कृषकों के लिए अधिक लाभप्रद व्यवसाय है। पशुधन की अधिकता के कारण खगड़िया जिले के अर्थव्यवस्था में पशुपालन का एक महत्वपूर्ण स्थान है तथा इसे जिले के एक मुख्य व्यवसाय के रूप में विकसित किया जा सकता है। दुग्ध उत्पादन का पशुपालन व्यवसाय में 70 प्रतिशत योगदान है। दुग्ध उत्पादन द्वारा पौष्टिक खाद्य पदार्थ प्राप्त करने के अलावा आय एवं रोजगार भी एक महत्वपूर्ण अवसर पैदा करता है। उन्नत तथा संकर नस्लों के गाय एवं उच्च दुग्ध उत्पादन क्षमता वाले भैंस से पशुपालन एक आर्कषक व्यवसाय बनता जा रहा है। साथ ही दुग्ध उत्पादन विषम परिस्थितियों में पशुपालकों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है। छोटे किसानों के लिए दूध नकदी फसल की तरह है जिसके उत्पादन में पारिवारिक श्रम का प्रयोग कर निम्न मूल्य वाले फसल उत्पाद एवं अवशेषों को उच्च मूल्य वाले उत्पाद में बदला जाता है। बिहार में वर्ष 2010–11 में प्रति व्यक्ति दूध की खपत 184 ग्राम मात्र थी जबकि राष्ट्रीय औसत 281 ग्राम था। खगड़िया जिले की स्थिति इससे निम्न नहीं है।

खगड़िया जिले में दुग्ध उद्योग की वर्तमान स्थिति

दुग्ध उत्पादन सहयोग समितियॉ – हाल के वर्षो में दुग्ध उत्पादन सहयोग समितियों द्वारा संचालित आधुनिक दुग्ध विपणन प्रणाली का विकास हुआ है लेकिन अभी भी परम्परागत तरीके का विपणन प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान है। खगड़िया जिले में

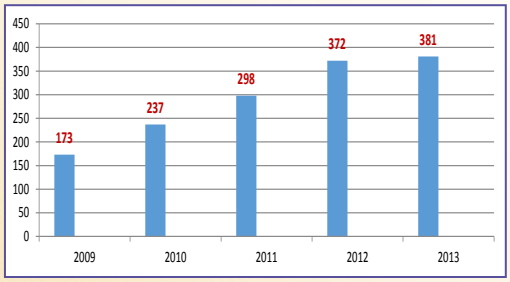

चित्र संख्या–1: खगड़िया जिले के दुग्ध सहकारी समितियों की संख्या।
स्त्रोत :– सुधा दुग्ध उद्योग, खगड़िया

दुग्ध उत्पादन समितियॉ मुख्य रूप से सुधा डेयरी द्वारा संचालित हैं। समिति के सदस्य दूध को नजदीकी दूध संग्रह केन्द्र पर लाते हैं जहॉ से इसे शीतक केन्द्रों पर भेजा जाता है। पुनः प्रसंस्करण एवं पैकेजिंग के लिए दूध को सुधा डेयरी, बरौनी भेजा जाता है। सुधा डेयरी अपने समिति के सदस्यों को जरूरत पड़ने पर ऋण एवं दुग्ध उत्पादन के लिए तकनीकी सहयोग प्रदान करती है। वर्ष 2009 से 2013 तक दुग्ध उत्पादक समितियों की संख्या जिले में 173 से बढ़कर 381 हो गयी है (चित्र संख्या–1)।

खगड़िया जिले में दुधारू पशुओं की संख्या – सरकारी आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2012 में खगड़िया जिले में दुधारू पशुओं की कुल संख्या 4,02,626 थी

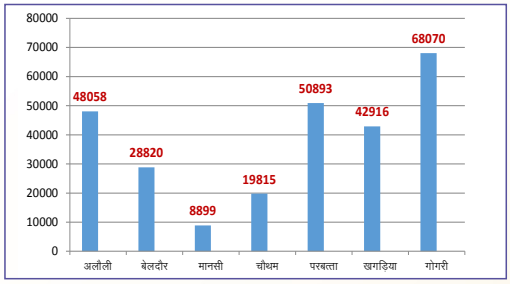

चित्र संख्या–3: खगड़िया जिले के प्रंखडवार गायों की संख्या (वर्ष 2013)
स्त्रोत :– पशुपालन एवं मत्स्य विभाग, खगड़िया

(50,893), अलौली (48,058), खगड़िया (42,916) आता है। सर्वाधिक भैंसों की संख्या (39,728) बेलदौर प्रखंड में है जिसके बाद स्थान क्रमशः खगड़िया (27,468), अलौली (29,941), चौथम (13,422) आता का है (चित्र संख्या – 2, 3 एवं 4)।

दुग्ध उत्पादन – पशुपालन विभाग एवं सुधा डेयरी के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2013 में खगड़िया जिले

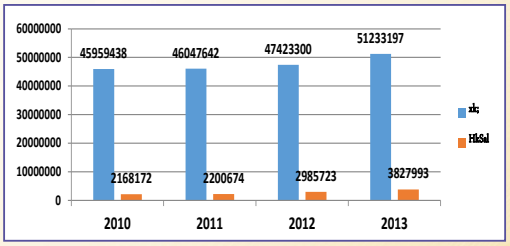

चित्र संख्या–5: खगड़िया जिले का दुग्ध उत्पादन
स्त्रोत :– सुधा दुग्ध उद्योग, खगड़िया

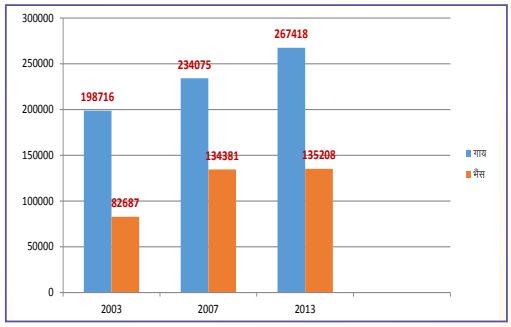

चित्र संख्या–2: खगड़िया जिले के दुधारू पशुओं की संख्या (वर्ष 2013)
स्त्रोत :– पशुपालन एवं मत्स्य विभाग, खगड़िया

जिसमें 66 प्रतिशत गायें थीं। जिले में दुधारू पशुओं की संख्या वर्ष 2003 में 2,81,403 से बढ़कर वर्ष 2007 में 3,68,456 तथा 2012 में 4,02,626 हो गयी। इस अवधि में भैंसों की संख्या बढ़कर 82687 से 135208 हो गई। दुधारू पशुओं की संख्या में उच्च वृद्धि पशुपालकों में इस व्यवसाय के प्रति आर्कषण को दर्शाता है। गाय की सर्वाधिक संख्या गोगरी प्रखंड में (68,070) है जिसके बाद क्रमशः परबत्ता

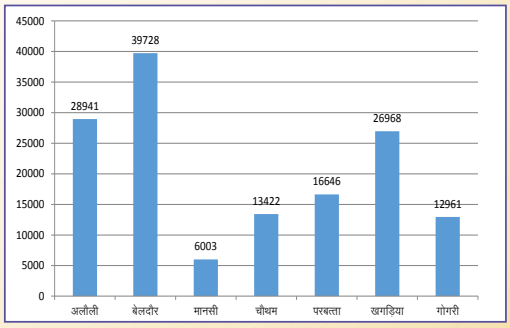

चित्र संख्या–4: खगड़िया जिले के प्रखंडवार भैंसों की संख्या (वर्ष 2013)
स्त्रोत :– पशुपालन एवं मत्स्य विभाग, खगड़िया

में गाय से 512.10 लाख लीटर तथा भैंस से 38.30 लाख लीटर दूध प्राप्त हुआ (चित्र संख्या –5)। गाय एवं भैंस के दूध की मात्रा में वर्ष 2010 से 2013 तक लगातार वृद्धि दर्ज की गई है। भैंस से दूध की उत्पादकता गाय की तुलना में बहुत कम पाई

गयी। जिले के संपूर्ण दुग्ध उत्पादन का लगभग 48 प्रतिशत सीधे असंगठित क्षेत्रों द्वारा तथा 42 प्रतिशत सहयोग समितियों द्वारा विपणन होता है।

दुग्ध उत्पादन से जुड़ी आर्थिक गतिविधियॉं – वर्ष 2013 में कुल दुग्ध उत्पादन का 46 प्रतिशत व्यापार द्रव्य दूध के रूप में, 27.50 प्रतिशत घी के रूप में, 11 प्रतिशत खोवा तथा पेड़ा के रूप में, 8.50 प्रतिशत पनीर तथा छेना के रूप में तथा 7 प्रतिशत दही के रूप में हुआ (चित्र संख्या – 6)।

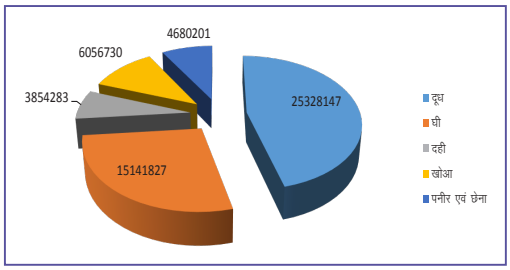

चित्र संख्या–6: खगड़िया जिले में दुग्ध एवं उसके उत्पादों के व्यवसाय की संख्या (वर्ष 2013)

स्त्रोत :– सुधा दुग्ध उद्योग, खगड़िया

विभिन्न श्रेणी के उत्पादकों का दुग्ध उत्पादन में योगदान

दुग्ध उत्पादन व्यवसाय में भूमिहीन तथा सीमान्त कृषकों की संख्या सर्वाधिक है। और यह व्यवसाय उनके जीविकोपार्जन का प्रमुख स्त्रोत है। तालिका 1 तथा 2 से यह स्पष्ट है कि यद्यपि भूमिहीन, सीमान्त तथा लघु कृषकों की संस्या दुग्ध उत्पादकों के कुल संख्या का 87.90 प्रतिशत है लेकिन कुल दुग्ध उत्पादन में उनका योगदान मात्र 63.50 प्रतिशत है। यह कमी उनके द्वारा की जानेवाली पशु प्रबंधन में खामियों तथा निम्न श्रेणी के नस्लों के कारण हो सकता है। प्रति इकाई पशुओं की संख्या तथा उनके उत्पादकता में सीधा सम्बन्ध है (तालिका–2)। ज्यादा दुधारू पशुओं की संख्या रखने वाले किसान डेयरी व्यवसाय के प्रति उद्योग की तरह रूचि रखते हैं।

तालिका–1: दुग्ध उत्पादकों के विभिन्न श्रेणियों की प्रतिशत संख्या

दुग्ध उत्पादको की श्रेणी	प्रतिशत
भूमिहीन	26.20
सीमान्त	45.10
छोटा	16. 60
मध्यम	08. 10
बड़ा	04.00

तालिका–2: दुग्ध उत्पादकों के विभिन्न श्रेणियों का दुग्ध उत्पादन एवं विपणन में सहभागिता

श्रेणी	दूध उत्पादन (लीटर/दिन)	दुग्ध उत्पादन में सहभागिता (:)
दुग्ध उत्पादको की श्रेणी		
भूमिहीन	1. 9	15.2
सीमान्त	2.1	33.7
छोटा	3.6	16. 8

मध्यम	4. 6	17.4
बड़ा	7.5	16.9
पशुओं की संख्या		
एक पशु	2.4	52.7
दो पशु	5.1	33.3
तीन पशु	5.3	08.3
तीन से अधिक पशु	11.9	05.7

डेयरी के विकास में बाधाएँ

गर्भाधान की सुविधा में कमी :– तमाम सरकारी प्रयासों के बावजूद गर्भाधान की सेवाऐं देने हेतु समुचित संख्या में कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र नहीं खोले जा सके हैं जो पशुओं के नस्ल के विकास एवं उनकी उत्पादकता पर प्रतिकुल असर डाल रहा है।

पशु स्वास्थ्य सुविधाओं में कमी :– पशुओं में कई तरह की बिमारीयॉ जैसे खुरपका एवं मुहपका, एच. एस, बी. क्यू. इत्यादि एकल या महामारी के रूप में होना आम बात है। बिमारीयॉ कम दुग्ध उत्पादकता का एक प्रमुख कारण हैं। अधिकांश पशुपालकों में इन बिमारियों से बचाव के प्रति जागरूकता में कमी है तथा वे इससे सम्बन्धित मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित है।

असंतुलित पोषण :– संतुलित पोषक आहार उच्च दुग्ध उत्पादन के लिए अति महत्वपूर्ण है। भूमिहीन, सीमान्त तथा लघु कृषक दुधारू पशुओं के संतुलित राशन पर ज्यादा खर्च नहीं करते जिससे उनके पशुओं की दूध उत्पादकता पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता है।

अज्ञानता :– पशुपालको में पशु प्रबन्धन के वैज्ञानिक तरीकों सम्बधित ज्ञान की कमी भी दुग्ध उत्पादन की बढ़ोतरी में बाधक है। अतः इस विषय पर उन्हें प्रशिक्षित करने की अत्यधिक आवश्यकता है।

आधारभूत सुविधाओं की कमी :– समुचित दूरी पर दुग्ध प्रसंस्करण की सुविधा में कमी तथा दुग्ध आधारित उद्योगों के अभाव के कारण दुग्ध उत्पादकों को दूध का सही मूल्य नहीं मिल पाता है।

समुचित विपणन का अभाव :– यद्यपि दूध के विपणन में दुग्ध समितियॉ एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं फिर भी उत्पादित दूधों के विपणन का एक बड़ा भाग अभी भी असंगठित क्षेत्रों द्वारा संचालित होता है। ऐसे में बाजार संचालन की महत्वपूर्ण शक्ति दुग्ध उत्पादकों के पास न होकर दुग्ध व्यपारियों के पास होता है और दुग्ध विपणन में होने वाले लाभ का महत्वपूर्ण भाग वही ले लेते हैं। यह दुग्ध उत्पादकों पर प्रतिकुल प्रभाव डालता है।

धन की कमी :– दूध उत्पादन बढ़ाने हेतु संकर तथा विदेशी नस्लों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके लिए उच्च पूँजी निवेश की आवश्यकता होती है। जैसा कि खगड़िया जिले के अधिकांश दुग्ध उत्पादक भूमिहीन, सीमान्त तथा लघु किसान हैं जिन्हें इस हेतु प्रर्याप्त धन की कमी है।

दुग्ध उत्पादन एवं विपणन की संरचना

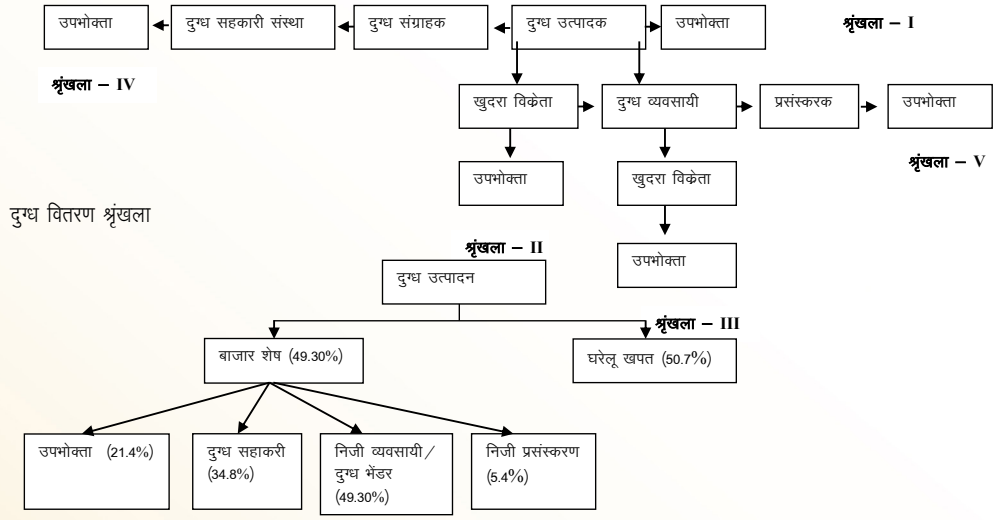

निष्कर्ष

खगड़िया जिले में डेयरी विकास की असीम संभावनाएँ है। जिले के ग्रामीण जनसंख्या का महत्वपूर्ण भाग इस व्यवसाय से जुड़ा हैं। मक्का इस जिले का मुख्य फसल होने के कारण पशु चारे की उपलब्धिता प्रचुर है। परन्तु इस व्यवसाय में अधिकांशतः भूमिहीन, सीमान्त तथा लघु कृषक जुड़े हैं। जिनके पास निम्न उत्पादकता वाले स्थानीय नस्ल के पशु हैं जो दुग्ध उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। इन किसानों के पास दुग्ध व्यवसाय के बारे में उचित ज्ञान की कमी, धन की कमी तथा उचित बाजार का भी अभाव है। उत्पादित दुग्ध के एक बड़े हिस्से का व्यापार असंगठित क्षेत्रों द्वारा होता है जिसमें कृषकों को उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। यदि इन कृषकों को उचित सहायता प्रदान की जाय एवं दुग्ध उत्पादन एवं उसके विपणन में होने वाली बाधाओं को दूर कर दिया जाय तो इस जिले के ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में दुग्ध उत्पादन महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। ग्रामीण युवकों को इस व्यवसाय से जोड़कर उनके पलायन को रोका जा सकता है तथा उनका उपयोग गॉवों के विकास में किया जा सकता है।

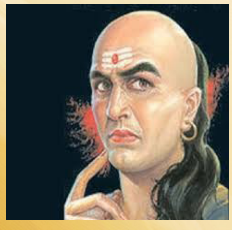

कोई व्यक्ति अपने कार्यों से महान होता है, अपने जन्म से नहीं।

– चाणक्य

किसानों की समृद्धि में कृषि विज्ञान केन्द्र, औरंगाबाद की भूमिका

डा. नित्यानन्द

कृषि विज्ञान केन्द्र, औरंगाबाद

बढ़ती जनसंख्या को खाद्यान्न उपलब्ध कराना एवं कृषि से जुड़े कृषकों एवं मजदूरों को आर्थिक सम्पन्नता लाना एक बड़ी चुनौती है। ऐसे में कृषि के क्षेत्र में सम्भावनाओं की तलाश, कृषि यांत्रीकरण, पशुपालन, उद्यानिक फसलों को बढ़ावा देना एवं कृषि उत्पादों में मूल्य संवर्द्धन को बढ़ावा देना आवश्यक हो जाता है। औरंगाबाद जैसे जिले के पास कृषि एवं कृषि से जुड़े अन्य कार्य जैसे पशुपालन, मुर्गीपालन, बकरी पालन के अलावा अन्य कोई विकल्प भी नहीं है। जिला का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 330.01 हजार वर्ग हेक्टेयर है जिसमें कुल कृषि योग्य भूमि 175.75 हजार हेक्टेयर एवं परती भूमि 72.73 हजार हेक्टेयर है।

जिला के समुचित विकास, कृषि के विकास से ही संभव है। इसे ध्यान में रखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली तथा तत्कालीन राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर के प्रयास से 24 जुलाई 2006 को औरंगाबाद जिला के बारूण प्रखण्ड अन्तर्गत सिरिस ग्राम में कृषि विज्ञान केन्द्र की स्थापना की गई जो कि वर्तमान में बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य कर रहा है। प्रारम्भिक दौड़ में विभिन्न समस्याओं से जुझता हुआ यह केन्द्र, माननीय कुलपति डा0 मेवा लाल चौधरी के कुशल नेतृत्व में 2009 से अपने लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर हुआ।

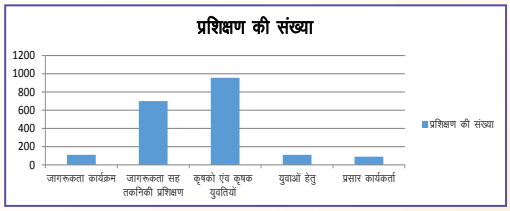

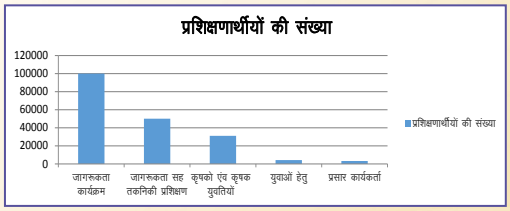

कृषि विज्ञान केन्द्र, औरंगाबाद अपने प्रारम्भिक अध्ययन में कृषकों के सहयोग से जिला में कृषि विकास हेतु निम्न आवश्यकताओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किया :–

1. जागरूकता अभियान।
2. कृषकों में आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण।
3. कृषि यांत्रीकरण हेतु प्रत्यक्षण।
4. कृषकों के समस्या को ध्यान में रखकर ऑन–फार्म ट्रॉयल।
5. उद्यानिक फसलों को बढ़ावा देना।
6. गुणवत्ता युक्त बीज की उपलब्धता।

7. दलहनी फसलों में उत्पादन तकनीकी पर प्रत्यक्षण।
8. जैविक उर्वरक, कीटनाशी एवं फफूंदनाशी का प्रयोग।
9. मशरूम उत्पादन।
10. संसाधन संरक्षण तकनीकी को बढ़ावा।
11. समेकित कृषि प्रणाली।

जागरूकता अभियान

कृषि विज्ञान केन्द्र, औरंगाबाद कृषकों में कृषि के नवीन तकनीकी के प्रति जागरूक करने के उद्देश्य से कृषि विभाग, बिहार सरकार के सहयोग से जिला में बृहद जागरूकता अभियान चलाया। इसके अन्तर्गत जिला के ग्यारहों प्रखण्ड मुख्यालय पर जागरूकता कार्यक्रम चलाया गया। अब तक कृषि विज्ञान केन्द्र, औरंगाबाद के माध्यम से 110 जागरूकता कार्यक्रम जिला के विभिन्न प्रखण्डों में आहुत की गयी जिसमें 1 लाख से अधिक कृषकों ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त सुखाड अभियान के तहत जिला के 708 पंचायतों में जागरूकता–सह–तकनीकी कार्यक्रम चलाया गया जिसमें 50000 से अधिक कृषकों ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त प्रक्षेत्र दिवस, किसान मेला, क्लीनिकल सर्विस, वैज्ञानिक प्रक्षेत्र भ्रमण, मोबाईल मैसेज आदि के माध्यम से हजारों कृषक लाभान्वित हो रहे हैं।

प्रशिक्षण

कृषकों में तकनीकी हस्तान्तरण हेतु कृषि विज्ञान केन्द्र, औरंगाबाद के द्वारा ग्रामीण कृषकों एवं कृषक महिलाओं हेतु 956 से अधिक प्रशिक्षण कार्यक्रम विभिन्न विषयों (फसल उत्पादन, कृषि यांत्रीकरण, फसल अवशेष प्रबंधन, समेकित कीट व्याधि प्रबंधन, समेकित उर्वरक प्रबंधन, समेकित खरपतवार प्रबंधन, मशरूम उत्पादन, उद्यानिक फसलों की उन्नत खेती आदि) पर दिया गया जिसमें 31000 से अधिक कृषक एवं कृषक महिलाओं ने भाग लिया।

युवाओं को स्वरोजगार से स्वाबलंबन हेतु प्रेरित करने के उद्देश्य से केन्द्र द्वारा 109 प्रशिक्षण का आयोजन किया जिसमें 4106 ग्रामीण युवक एवं युवतियों ने भाग लिया। वर्तमान में 1500 से अधिक युवक एवं युवतियों प्रशिक्षणोपरान्त स्वरोजगार में संलग्न हैं।

तकनीकी हस्तान्तरण में बहुत बड़ा योगदान प्रसार कार्यकत्ताओं का होता है। इस दिशा में केन्द्र द्वारा 90 प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रसार कार्यकत्ताओं हेतु

आहुत किये गये जिसमें 3170 प्रशिक्षणार्थियों ने भाग लिया।

कृषि विज्ञान केन्द्र, औरंगाबाद के द्वारा विगत 3 वर्षों से किसान चौपाल का आयोजन किसानों के समस्याओं के त्वरित निदान हेतु कृषि विभाग एवं आत्मा के सहयोग से आयोजित किया जा रहा है जिससे लगभग 5000 से अधिक कृषकों ने लाभ उठाया है। इसके अतिरिक्त बिहार कृषि विश्वविद्यालय द्व ारा विडियो कॉफ्रेंसिंग की व्यवस्था की गई है। इसके द्वारा जिला के कृषक विश्वविद्यालय से सीधे–सीधे जुड़कर तकनीकी ज्ञान प्राप्त करते हैं।

कृषि यांत्रीकरण हेतु प्रत्यक्षण

औरंगाबाद जिला में कृषि यंत्रों का प्रयोग ट्रेक्टर एवं कल्टीवेटर तक ही सीमित था जो जुताई हेतु प्रयोग में लायी जाती थी। वर्ष 2009 में जिला में मात्र 2 जीरोटिलेज मशीन हुआ करता था जिसका उपयोग किसान तकनीकी ज्ञान के अभाव में नहीं करते थे। कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि में कृषि यंत्रों की उपयोगिता एवं आवश्यकता को देखते हुये कृषि यांत्रीकरण पर बृहद कार्य योजना तैयार किया। इसके अन्तर्गत ऑन फार्म ट्रायल, प्रत्यक्षण, प्रशिक्षण एवं प्रक्षेत्र भ्रमण के माध्यम से किसानों को कृषि यांत्रीकरण अपनाने हेतु उत्प्रेरित किया। इसके फलस्वरूप वर्तमान में 1000 से अधिक जीरो टिलेज मशीन, 30 हार्वेस्टर, 1000 से अधिक पावर टिलर कृषकों के द्वारा क्रय किया गया। वर्ष 2013–14 में कृषकों द्वारा लगभग 40000 हेक्टेयर में गेहूँ, 1500 हेक्टेयर में मसूर की बुआई जीरो टिलेज मशीन के माध्यम से किया गया। इस प्रकार एक तरफ जहाँ कृषकों की उत्पादकता में 20 से 25 प्रतिशत की वृद्धि हुई वहीं उत्पादन लागत में भी 2000 रूपये प्रति हेक्टेयर की कमी आयी।

ऑन–फार्म ट्रॉयल

कृषकों को उन्नत प्रजाती उपलब्ध कराने एवं उन्नत तकनीकी हस्तांतरण कराने के उद्देश्य से कृषि विज्ञान केन्द्र अपने स्थापना काल से लगभग 32 ऑन फार्म ट्रायल 200 से अधिक कृषकों के प्रक्षेत्र पर लगाया गया उससे प्राप्त परिणाम के आधार पर केन्द्र के द्वारा विभिन्न फसलों की नवीन प्रजाति एवं तकनीकी कृषि विभाग एवं कृषकों तक पहुँचाया गया।

उद्यानिक फसलों को बढ़ावा

औरंगाबाद जिला का धान-गेहूँ, धान-दलहन, धान-तेलहन, धान-सब्जी फसल प्रणाली रही है। ऐसे में उद्यानिक फसलों की ओर कृषकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिये कृषि विज्ञान केन्द्र विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण, प्रत्यक्षण, प्रक्षेत्र भ्रमण आहुत किया। जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान में जिला में 50 हेक्टेयर से अधिक भूभाग पर आँवला, पपीता, आम एवं अमरूद का बगीचा विकसित हुआ है साथ ही फूल एवं एक्जोटिक सब्जी के संरक्षित खेती पॉली हाऊस के अन्दर किया जा रहा है। यह कृषकों में काफी प्रचलित हो रहा है। वर्तमान में जरबेरा, लिलियम, रजनीगंधा, ग्लैडियोलस एवं गेंदा आदि फूलों की खेती व्यावसायिक रूप से किया जा रहा है। सब्जी में शिमला मिर्च, ब्रोकली, फ्रेचबीन, रेड कैबेज आदि की खेती तीव्र गति से प्रसारित हो रहा है।

गुणवत्ता युक्त बीज की उपलब्धता

जिला के किसानों की सबसे बड़ी समस्या गुणवत्तायुक्त बीज की उपलब्धता रही है। कृषि विज्ञान केन्द्र इस दिशा में अग्रणीय भूमिका निभाते हुये केन्द्र के फार्म पर गुणवत्तायुक्त धान, गेहूँ, मसूर, चना आदि का आधार बीज उत्पादन प्रारम्भ किया जो विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित मूल्य पर कृषकों को उपलब्ध कराया गया साथ ही कृषकों के प्रक्षेत्र पर प्रमाणित बीज का उत्पादन कराया गया तथा कृषकों को विश्विविद्यालय द्वारा निर्धारित मुल्य पर उपलब्ध कराया गया। वर्तमान में बीज बदलाव दर धान में 90 प्रतिशत, गेहूँ में 40 प्रतिशत, मसूर में 35 प्रतिशत तथा चना में 18 प्रतिशत है। इसके कारण फसल उत्पादन एवं उत्पादकता पर 30 प्रतिशत तक वृद्धि हुई है।

दलहनी फसलों के उत्पादन तकनीकी पर प्रत्यक्षण

औरंगाबाद जिला में मसूर के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल 16,500 है (2013–14)। मसूर औरंगाबाद जिला की मुख्य रबी दलहन फसल है। गेहूँ के पश्चात् रबी मौसम की दूसरी मुख्य फसल है। मसूर की औसत उत्पादकता 7.5 क्विं/हे0 तथा कुल उत्पादन 123750 क्विं हुआ।

कृषि विज्ञान केन्द्र, औरंगाबाद द्वारा केन्द्र पर आयोजित प्रशिक्षण, गाँवों में आयोजित प्रशिक्षण कृषि विभाग द्वारा आयोजित प्रशिक्षण एवं अन्य विभागों द्वारा आयोजित प्रशिक्षणों में मसूर की खेती शून्य जुताई द्वारा करने का प्रशिक्षण दिया गया तथा उससे सम्बन्धित प्रदर्शन 2010–11 से प्रारम्भ किया गया। इसके पूर्व 2009–10 तक औरंगाबाद जिला में मसूर की खेती प्रायः पैरा या परम्परागत विधि से की जाती रही है जिसमें काफी कम उत्पादत प्राप्त होता था क्योंकि कृषक 'पैरा विधि' में समय पर पोषक तत्व एवं खरपतवारों का प्रबन्ध नहीं कर पाते थे। परम्परागत विधि से मसूर की बुआई करने से बुआई में विलम्ब हो जाता है जिसके कारण उत्पादन में ह्रास होता है।

कृषि विज्ञान केन्द्र, औरंगाबाद द्वारा वर्ष 2010–11 में 5.0 हे0 क्षेत्रफल में प्रदर्शन कराया गया तथा 2.0 हे0 क्षेत्रफल में कृषकों ने स्वयं जीरो टिलेज मशीन द्वारा बुआई की गई जिससे उत्पादन में 55.72 से 63.33 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई। वर्ष 2013–14 में औरंगाबाद जिला का कुल 1237500.0 क्विं0 हुआ। यदि हम जीरो टिलेज मशीन द्वारा बुआई करते हैं तो हमारी उत्पादकता 7.5 क्विं0 से बढ़कर 12.25 क्विं0 हो जाएगी जिससे प्रति हेक्टेयर 4.75 क्विं0 अधिक उत्पादत प्राप्त हुआ। यदि हम उपरोक्त विधि से मसूर की खेती करते हैं तो बिना किसी अन्य खर्च के कुल 78375.00 क्विं0 अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। जिससे कुल अतिरिक्त आय रू0 35,26,87,500.00 औरंगाबाद के कृषकों को हो सकती है।

अतः शून्य विधि से मसूर उत्पादन करके कृषक अपनी आय को बढ़ा सकते हैं साथ ही साथ समय, श्रम, ईंधन एवं पूँजी की भी बचत कर सकते हैं।

जैविक उर्वरक, कीटनाशी एवं फफूंदनाशी का प्रयोग

2009 से पूर्व कृषकों द्वारा सिर्फ रासायनिक उर्वरक, कीटनाशी एवं फफूंदनाशी का प्रयोग किया जाता था। कृषि विज्ञान केन्द्र के द्वारा चलाये गये विभिन्न प्रशिक्षणों से प्रभावित होकर किसान जैविक उर्वरक (वर्मी कम्पोस्ट, पी0एस0बी0, एजेटोवेक्टर), जैविक कीटनाशी (एन0पी0वी0, विवेरिया वैसानिया, बी0टी0 एवं नीम तेल) एवं जैविक फफूंदनाशी (ट्राइकोडर्मा) का प्रयोग प्रारम्भ किया है।

मशरूम उत्पादन

मशरूम के पौष्टिक एवं औषधीय गुण को देखते हुये औरंगाबाद जिला में केन्द्र के द्वारा प्रशिक्षण, प्रत्यक्षण एवं उत्पादन तकनीकी पर ऑन फार्म ट्रायल लगाया गया जिससे प्रभावित होकर जिले में 100 से अधिक महिलाओं एवं पुरूषों के द्वारा मशरूम का व्यवसायिक एवं अपने उपयोग हेतु बटन और ओयेस्टर मशरूम का उत्पादन किया जा रहा है।

संसाधन संरक्षण तकनीकी को बढ़ावा

कृषि अवशेष को जिला के कृषकों द्वारा प्रायः जला दिया जाता रहा है जिसके फलस्वरूप मृदा में उपलब्ध जीवांश, पोषक तत्व एवं मित्र कीट का नाश हो जाता है साथ ही मृदा की संरचना भी खराब होती जा रही है। कृषि विज्ञान केन्द्र इस ज्वलंत समस्या के समाधान हेतु एक तरफ जहाँ बृहद पैमाने पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आहुत किया वहीं दूसरी तरफ केन्द्र के प्रक्षेत्र पर फसल अवशेष को संरक्षित कर विभिन्न फसलों

को लगाया गया जिसे कृषकों को प्रशिक्षण एवं प्रक्षेत्र भ्रमण के अवसर पर दिखाया गया एवं इसके महत्व को विस्तार से बताया गया। वर्तमान में भारी संख्या में कृषक फसल अवशेष को संरक्षित करने की दिशा में अग्रसर हैं। इससे प्रक्षेत्र की मृदा की संरचना को बनाये रखा जा रहा है।

समेकित कृषि प्रणाली

विगत कुछ वर्षों में देखा गया कि औरंगाबाद जिला में वर्षापात सामान्य से काफी कम रहा है जिसके कारण धान, गेहूँ एवं दलहनी फसलों के उत्पादन पर विपरित प्रभाव पड़ रहा है। इस प्रभाव को कम करने एवं कृषकों को धान, गेहूँ के अतिरिक्त औद्यानिक फसल एवं पशुपालन हेतु प्रेरित करने का काम कृषि विज्ञान केन्द्र कर रहा है। इस दिशा में बिहार कृषि विश्वविद्यालय द्वारा छोटे–छोटे जोत हेतु समेकित कृषि प्रणाली विकसित किया गया है। कृषि विज्ञान केन्द्र छोटे कृषकों की आय वृद्धि करने के उद्देश्य से फसल उत्पादन, सब्जी उत्पादन एवं पशुपालन पर आधारित कृषि प्रणाली को कृषकों तक पहुँचा रही है जिससे किसान अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर रहे हैं।

इस प्रकार कृषि विज्ञान केन्द्र, औरंगाबाद जिला के कृषकों को तकनीकी रूप से सुदृढ़ बनाने में सतत् प्रयत्नशील है। इसका लाभ उठाकर कृषक कृषि के नवीन विद्याओं को अपना रहे हैं और अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर रहे हैं।

वैशाली जिले में बटेर पालन एक सफल व्यवसाय

डा. देवैद्र कुमार

कृशि विज्ञान केन्द्र, वैशाली

वर्तमान समय में देश के जनसमुदाय का निम्न पोषण स्तर तथा प्रोटीन की कमी की आहार में कमी को पूरा करने के लिये कुक्कुट पालन का इस देश में एक अलग ही महत्व है । ब्रायॅलर मॉस एवं अण्डे जहॉ एक ओर उच्च किस्म के प्रोटीन के बहुमूल्य स्त्रोत है वही इनमे विभिन्न प्रकार के अन्य पदार्थ भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है जो कि जनसमुदाय के पोषण के लिये काफी महत्वपूर्ण है।

जापानी बटेर (जिसे आमतौर पर बटेर भी कहा जाता है) पालन मुर्गी पालन क्षेत्र में व्यवसायिक रूप में लाभदायक अण्डे और मांस उत्पादन की उत्तम क्षमता के कारण एक विकल्प के रूप में उभरा है । जापानी बटेर (कोटरनिक्स कोटरनिक्स जापोनिका) जाति से सम्बधित है, जिसे सर्वप्रथम 1595 में पाला गया तथा हमारे देश में पहली बार वर्ष 1974 में केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान, बरेली द्वारा केलीफोर्निया विश्वविद्यालय, यू0एस0ए0 जर्मनी एवं कोरिया से लाया गया । पालतू जाति के जापानी बटेर को हमारे देश में लाया जाना किसानों के लिए स्वरोजगार के तौर पर काफी महत्वपूर्ण सिद्व हुआ है । यह आहार में मांस एवं अण्डे के रूप में प्रयोग किये जाने के अतिरिक्त अपने अन्य विशेष गुणों के कारण भी व्यवसायिक तौर पर लाभदायक है

1. बटेर के लिए मुर्गी पालन की अपेक्षा कम स्थान की आवश्यकता होती है । एक मुर्गी पालने के लिए निर्धारित स्थान में 5–6 बटेर रखे जा सकते है । छोटे आकार के कारण (व्यस्क शरीर भार 200–250 ग्राम) इसका संचालन आसान होता है, साथ ही दाने के खपत भी कम होती है ।
2. बटेर की शारीरिक बढ़वार तीव्र होती है तथा 5 सप्ताह में खाने योग्य हो जाते है ।
3. मादा बटेर 41–45 दिन के आयु से ही अण्डा देना आरम्भ कर देती है और 60 वे दिन तक पूर्ण उत्पादन की अवस्था में आ जाती है । एक वर्ष में बटेर औसतन 280–300 अण्डे देती है ।
4. बटेर के एक वर्ष में उसकी 5–6 पीढ़ियॉ प्राप्त की जा सकती है ।
5. बटेर के अण्डे और मांस में संतुलित मात्रा में अमीनो अम्ल, विटामिन, वसा और खनिज लवण की अच्छी मात्रा होती है । बटेर के अण्डे का वनज 9–14 ग्राम के लगभग होता है । अण्डे का रंग चित्तीदार (बहुरंगीय एवं सफेद) होता है लेकिन सफेद रंग के भी अण्डे पाये जाते है । बटेर के अण्डे गुणवत्ता में मुर्गी के अण्डे से कम नही होते है ।

6. मुर्गियो की अपेक्षा बटेरो में रोग कम होते है । इसी कारण इनकों किसी प्रकार की टीका नही लगाया जाता है क्योंकि अभी तक इनमें कोई विशेष बीमारी सामने नही आई है ।

7. बटेर अण्डे में उमपद कार्बोहाइड्रेट प्रोटीन उपद्रव वपक वसा खनिज लवण एवं बटेर के मांस में 20.54 प्रतिशत प्रोटीन, 3.85 प्रतिशत वसा लवण, 0.50 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट तथा 1.12 प्रतिशत खनिज लवण पाये जाते है । जापानी बटेर के अण्डे में 24 प्रतिशत पानी 13 प्रतिशत प्रोटीन 11 प्रतिशत वसा 1 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट उर्जा 649 मि0 जू0/100 ग्राम तरल चलरंजीय इसके साथ ही साथ बटेर के अण्डों में कोलेस्टेरोल की मात्रा सबसे कम 18.08 मि0 ग्रा0/ग्राम योक में पायी जाती है जबकि सही कोलेस्टेरोज उनतहप उमपद 20–22 मि0 ग्रा0 प्रति ग्राम मांस में पाया गया है।

अपने कम वजन, कम जगह की आवश्यकता, शीध्र एवं तीव्र बढवार, शीध्र वयस्कता की प्राप्ति, अधिक अण्डे एवं मांस उत्पादन की क्षमता के कारण बटेर पालन जापान, सिंगापुर, हॉगकॉग, फ्रांस, इग्लैंड, इटली, आदि देश में व्यावसायिक तौर पर अधिक प्रचलित है । विश्व के विकासशील तथा उल्प विकसित देशों के लिए बटेर पशु प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत बन सकता है, अतः आवश्यकता इसके वैज्ञानिक ढंग से पालन की है ।

वैशाली जिले में कार्यरत बटेर पालक संघ की सूची

1. श्री जय हनुमान बटेर पालक जिला संघ
   ग्राम – चिकनौटा, हाजीपुर, वैशाली
2. सत्यम–शिवम सुन्दरम बटेर पालक जिला संघ
   ग्राम – गोढ़िया चमन, वारिसपुर, भगवानपुर
3. बुद्वा बटेर पालक जिला संघ
   ग्राम – आसतपुर, सतपुरा, भगवानपुर
4. काजल बटेर पालक जिला संघ
   ग्राम – शिमला क्लायणपुर, भगवानपुर
5. नवयुवक बटेर पालक जिला संघ
   ग्राम – गडई सराय, हाजीपुर, वैशाली
6. बाबा बटेर पालक संघ
   ग्राम – इसमाईलपुर, हाजीपुर, वैशाली
7. पंचमूर्ति बटेर पालक संघ
   ग्राम – मीरपुर, पताढ, राजापाकर, वैशाली
8. जय माता दी बटेर पालक संघ
   ग्राम – आदमपुर, कटरमाला, गोरौल
9. ईश्वर अल्लाह बटेर पालक संघ
   ग्राम – अरड़ा धरहरा, हाजीपुर, वैशाली

10. प्रगतिशील बटेर पालक संघ
    ग्राम हिलालपुर, हाजीपुर, वैशाली
11. आकाश गंगा बटेर पालक संघ
    ग्राम – लक्ष्मीपुर बखरी, फतेहपुर फुलवरिया, राजापाकर
12. भगत सिंह बटेर पालक संघ
    ग्राम – लक्ष्मीपुर बखरी, फतेहपुर फुलवरिया, राजापाकर
13. जय मॉ बटेर पालक संघ
    ग्राम – लक्ष्मीपुर बखरी, फतेहपुर फुलवरिया, राजापाकर
14. जय मॉ सरस्वती बटेर पालक जिला संघ
    ग्राम – मुर्तुजापुर, वैशाली
15. सरस्वती बटेर पालक संघ
    ग्राम – कॉटी, लालगंज
16. वैशाली बटेर पालक संघ
    ग्राम – जारंग, रामपुर, पटेढी बेलसर
17. स्टार बटेर पालक संघ
    ग्राम – बलवॉ कुवॉरी, हाजीपुर
18. शिव शक्ति बटेर पालक संघ
    ग्राम – गदाई सराय, हाजीपुर, वैशाली
19. शशि बटेर पालक संघ
    ग्राम – डेढपुरा, महनार, वैशाली
20. जन कल्याणी बटेर पालक संघ
    ग्राम – असोई, लच्छीराम, भगवानपुर, वैशाली
21. राम रहीम बटेर पालक संघ
    ग्राम – मानसीपुर, फतेहपुर, राजापाकर
22. मुरलीधर समेकित बटेर पालक संघ
    ग्राम – सिंगहारा, महुआ, वैशाली
23. खशबु बटेर पालक संघ
    ग्राम – बलवॉ कुवॉरी, हाजीपुर
24. जय अम्बे बटेर पालक संघ
    ग्राम – कल्याण्पुर, राजापाकर
25. अनमोल बटेर पालक संघ
    ग्राम – लक्ष्मीपुर बखरी, फतेहपुर फुलवरिया, राजापाकर
26. आदर्श बटेर पालक संघ
    ग्राम – लक्ष्मीपुर बखरी, फतेहपुर फुलवरिया, राजापाकर

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए नाबार्ड, प्रेम यूथ फांउडेशन तथा कृषि विज्ञान केन्द्र, वैशाली द्वारा एक विशेष मुहीम के तहत् सन 2011 से जिले में बटेर पालन को बढावा देने के लिए जिले में विभिन्न प्रशिक्षणों एवं शिविरों के द्वारा जिले के किसानों को बटेर पालन के महत्व एवं इसके उपयोग के बारे में जानकारी विभिन्न किसान क्लबों के गठन के फलस्वरूप देने का प्रयास किया गया है।

शुरूआती दौर में करीब एक सौ किसानों को चयनित कर बटेर पालन की दिशा में प्राथमिक कार्य शुरू किया गया । शुरूआत में बिहार में बटेर के चूजों की उपलब्धता नही रहने के कारण इसे उत्तरप्रदेश

से मॅगवाया जाता था लेकिन आज परिस्थिति दूसरी है तथा वैशाली जिलें में ही नाबार्ड के सहयोग से इसकी हैचरी की व्यवस्था की गई है तथा अब इसके चूजे को बिहार से बाहर भी भेजा जा रहा है जिसे जिले के रूडसेट संस्थान, वैशाली का काफी सहाहनीय प्रयास रहा है ।

बटेर पालन के लिए जिलें में अभी मुख्यतन कैरीउत्तम नस्ल के बटेर को 26 बटेर पालक संघ पाल रहे है, जिनका मुख्य कार्य फार्म बनाकर इसका उत्पादन शुरू किया गया है । बटेर पालन का प्रशिक्षण तथा मार्केटिंग के लिए जिले के पंचमूर्ति जैविक बिक्री केन्द्र के सचिव श्री सुबोध कुमार, प्रेम यूथ फांउडेशन के संस्थापक श्री प्रेम कुमार तथा जिला सचिव श्री राजदेव राय ने इस दिशा में विशेष कार्य करना शुरू किया है तथा मागनपुर के श्री गुडडू कुमार, मुकुंदपुर के श्री राकेश कुमार, सरसई के श्री अनुपम कुमार, कुतुबपुर के श्री सुरेन्द्र झा, नीरपुर पताढ के श्री संजीव कुमार ने बटेर पालन को व्यवसाय बनाने का बीड़ा उठाया है । यहॉ यह बताना जरूरी है कि जिन किसानों के पास खेती योग्य कम जमीन है वे लोग बटेर पालन की दिशा में ज्यादा सक्रिय है, जो गॉव के ही कुछ बेरोजगार युवक से इस दिशा में सहयोग ले रहे हे और समय–समय पर नाबार्ड, कृषि विज्ञान केन्द्र, वैशाली, रूडसेट जैसे संस्थानों से मदद लेकर विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण एवं राज्य के बाहर भिजिट कार्यक्रम के तहत भाग लेकर बटेर पालन की दिशा में उच्चस्तरीय तकनीकों की जानकारी लेकर उसे वैशाली जिले में इसका लाभ ले रहे है ।

आज मुर्ग के मांस से मॅहगा होने के बावजूद कम फैट होने के कारण मांसहारी लोग बटेर के प्रति ज्यादा आकर्षित हो रहे है । बटेर में मुर्ग की तुलना में रोग की संभावना कम होती है तथा इसमें किसी प्रकार के टीके लगाने की आवश्यकता नही होती है क्योंकि इसमें संतुलित मात्रा में अमीनोसीड फैट और खनिज तत्व होते है । यहॉ यह बताना आवश्यक है कि यह एक सशक्त पक्षी है तथा इसके अण्डे के सेवन से टीवी, दमा आदि बीमारियों में काफी राहत मिलती है ।

आज वैशाली जिले में उत्पादित बटेर को पटना, मुजफ्फरपुर, चंपारण जिलों के होटलों में सप्लाई किया जा रहा है जो वैशाली जिले के लिए गौरव की बात है और हो सकता है कि आने वाले दिनों में यह जिले का कही रोल मोडेल न हो जाय । आज वैशाली जिला में एक महीने में करीब 45000 बटेर के अण्डे को हैचरी में रखकर चूजा बनाया रहा है जिससे करीब 25000 से 30000 हजार चूजे सही सलामत निकलते है । ये चूजे जब एक सप्ताह के हो जाते है तो 15 रूपये में बटेर पालकों को बेचा जाता है तथा जब किसानों के यहॉ यह चूजा 200–250 ग्राम का हो जाता है तो इसे व्यापारी लोग 50 रूपये प्रति नग के हिसाब से इसे खरीदते है जिसे बाजार में 60 रूपया प्रति नग की दर से बेचा जा रहा है । अतः यदि मोटे तौर पर देखा जाय तो एक बटेर पालक यदि सही ढंग से काम कर रहा है तो उसे करीब 2.5 लाख से 3.00 लाख रूपये प्रति महीने की आमदनी सुनिश्चित है जिसे बढावा देने की आवश्यकता है जिससे वैशाली जिले का नाम राज्य एवं देश के बुनियादी ढांचे में आ जाय तथा जिले के लोग को गौरव प्रदान हो ।

शिवहर जिले में मधुमक्खी पालन की रोजगारोन्मुखी संभावनायें

डा. आर. एन. सिंह

कृषि विज्ञान केन्द्र, शिवहर

प्राचीनकाल में जंगली एवं देशी मधुमक्खियों द्वारा जंगलों में, पेड़ों, मकानों इत्यादि में बनाए गए छत्तों को तोड़कर शहद (मधु) निकाला जाता था। उन्नीसवीं सदी के मध्य में मधुमक्खियों को मधुमक्खी गृहों/बक्सों (मौन पेटिकाओं) में रखकर पालने के प्रयास शुरू किए गए ताकि मधुमक्खियों के छत्तों को नुकसान पहुँचाए बगैर शहद उत्पादन किया जा सके। इन्हीं प्रयासों के फलस्वरूप वैज्ञानिक मधुमक्खी पालन का जन्म हुआ जो वर्तमान में एक उन्नत और लाभदायक व्यवसाय का रूप ले चुका है।

व्यवसायिक तौर पर शहद का उत्पादन करने के लिए वैज्ञानिक तरीके से बनी लकड़ी की पेटियों में मधुमक्खीपालन किया जाता है। इन पेटियों में मधुमक्खियॉ अपना छत्ता विकसित कर उनमें शहद एकत्रित करती हैं। छत्तों में भंडारित शहद को इसमें सुरक्षित मधुमक्खी के अंडे/बच्चों को नुकसान पहुँचाए बगैर, वैज्ञानिक तरीके से बने मधु निस्कासन यंत्र द्वारा निकालकर छत्तों को पुनः पेटियों में डाल दिया जाता है। इस प्रकार से निकाले गए शहद को एपियर शहद (Apiary Honey) कहा जाता है, जबकि पेड़ों/मकानों पर लगे छत्तों को तोड़कर उन्हें हाथ से निचोड़कर निकाले गए शहद को जंगली शहद (Forest Honey) कहते हैं। मधुमक्खियों विभिन्न प्रकार के पेड़ों/पौधों/फसलों/ सब्जियों के फूलों से रस एकत्रित करती हैं जिन्हें वे अपने शरीर के विशेष एन्जाइम्स के मिश्रण से शहद का रूप देती हैं और अपने छत्तों में एकत्रित करके पकाकर खाने योग्य बनाती हैं।

मधुमक्खियॉ शहद बनाने के लिए फलों से मकरंद (पुष्परस) एवं पराग को इकट्ठा करती हैं। अतः व्यवसायिक मधुमक्खी पालन द्वारा अधिकाधिक शहद का वर्ष भर उत्पादन करने के लिए मधुमक्खी के बक्सों को मौसम और फूलों की उपलब्धता के अनुसार एक जगह से दूसरे जगह स्थानांतरित किया जाता है। जिससे मधुमक्खीयों को प्रचुर मात्रा में मकरंद व पराग प्राप्त हो सके। मधुमक्खियों यदि 70 प्रतिशत से अधिक मकरंद एक प्रकार के पेड़/पौधो के फूलों से एकत्रित करती हैं तो उससे उत्पादित होने वाले शहद को एकलपुष्पी शहद (Uni-floral Honey) कहते हैं और वह शहद उस पेड़/ पौधे के नाम से जाना जाता है, जैसे– लीची के फूल से एकत्रित किये हुए मकरंद से बने शहद को लीची शहद और सरसों के फूल के मकरंद से बने शहद को सरसों के शहद के नाम से जाना जाता है। इसी तरह से कई प्रकार के पुष्पी श्रोतों के मकरंद से बने शहद को बहुपुष्पी/ मिश्रित शहद (Multi-floral honey) कहते हैं।

वैज्ञानिक रूप से किए जाने वाले मधुमक्खी पालन ईकाईयों द्वारा भारत में एकल पुष्पी और बहु पुष्पी दोनों प्रकार के शहद का उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार से उत्पादित शहद की अपूर्त्ति देश में ही नहीं वरन् विदेशों में भी की जाती है, जहां सभ्यताओं और परंपराओं के आधार पर इसका उपयोग भोजन, दवा के अलावा सैकडों अन्य रूपों में भी किया जाता है।

बिहार में मधुमक्खी पालन

यद्यपि भारत वर्ष में मधुमक्खियों की सात प्रजातियॉ पाई जाती है परन्तु केवल दो प्रजातियों को ही व्यवसायिक मधुमक्खीपालन के लिए काम में लाया जाता है क्योंकि केवल उन्हें ही बक्सों में पाला जा सकता है। भारत में व्यवसायिक मधुमक्खीपालन का प्रारंभ सर्वप्रथम मधुमक्खी की देशी प्रजाति एपिस सेराना इंडिका से सन् 1882 में बंगाल तथा सन् 1884 में पंजाब से हुआ1। वर्ष 1985–86 के दौरान विषाणु जनित रोग लग जाने से देश के लगभग समस्त प्रान्तों में इस मधुमक्खी का पालन समाप्त सा हो गया। इसके उपरान्त इटली से लाई गई मधुमक्खी की एक उन्नत प्रजाति एपिस मेलिफेरा (जिसे सामान्य बोलचाल की भाषा में इटालियन मधुमक्खी कहते है) का प्रचार देश भर में विशेषकर उत्तरी भरत में व्यापक पैमाने पर किया गया। देशी मधुमक्खी की तुलना में ज्यादा शहद उत्पादन क्षमता और रोग प्रतिरोधक क्षमता होने के कारण इटालियन मधुमक्खी का व्यापक स्तरों पर प्रसार हुआ। वर्तमान समय में व्यावसायिक मधुमक्खीपालन के लिए देश में मुख्य रूप से इटालियन मधुमक्खी ही पाली जाती है।

मधुमक्खी पालन के क्षेत्र में बिहार का स्थान देश के अग्रणी राज्यों में रहा है। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड से प्राप्त आंकड़े इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

भारत के प्रमुख शहद उत्पादक राज्य

बिहार राज्य शहद उत्पादन में एक दशक से भी ज्यादा समय से देश में दूसरे स्थान पर रहा है बल्कि 1997–98 के दौरान बिहार अपने निकटतम प्रतिद्वंदी तमिलनाडु राज्य को पीछे छोड़ते हुए भारत का सर्वाधिक मधु उत्पादक राज्य बन गया था। शहद उत्पादन के दृष्टिकोण से बिहार राज्य उच्च गुणवत्ता की लीची शहद के उत्पादन के लिए देश में ही नहीं वरन विदेशों में भी विख्यात है।

बिहार में वृहद पैमाने पर मधुमक्खी पालन मख्यतः मुजफ्फरपुर, वैशाली, पूर्वी चम्पारण और समस्तीपुर जिलों में होता है। बिहार में उपलब्ध लीची बागान, दलहन, तिलहन की फसलें, साग–सब्जियों तथा अन्य प्रकार के मौसमी पेड़–पौधे मधुमक्खी पालन व्यवसाय के लिए आदर्श वातावरण प्रदान करते हैं, जिसकी वजह से मधुमक्खी पालन न सिर्फ इन जिलों में 300 से जयादा गाँवों के लगभग 5000 ग्रामीणों के जीविकोपार्जन का प्रमुख आधार है बल्कि कुछ अन्य जिलों जैसे–गया, बाढ़, खगड़िया, बेगुसराय इत्यादि में भी यह एक प्रमुख व्यवसाय के रूप में विकसित हो रहा है। मधुमक्खी पालन के दृष्टिकोण से बिहार के तीन प्रमुख जिलों मुजफ्फरपुर, वैशाली एवं पूर्वी चम्पारण मधुमक्खी पालन के कमिक विकास का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

इन जिलों में व्याप्त बेरोजगारी तथा रोजगार की तलाश में यहां से अन्य राज्यों में होने वाले पलायन की तुलना यदि हम बिहार में मधुमक्खी पालन के लिए उपलबध प्राकृतिक संसाधनों से करें तो विकास दर काफी धीमी प्रतीत होती है। इसका प्रमुख कारण इस व्यवसाय से जुड़े मधुमक्खी पालकों की कुछ मूलभूत समस्याएं हैं जिनके निराकरण से हरित क्राति (Green revolution) और श्वेत क्राति (White Revolution) की तरह बिहार में एक स्वर्णिम क्राति (Golden revolution) लाया जा सकता है और रोजगार की तलाश

में अन्य राज्यों में पलायन करने वाली बिहार की जनता को घर में ही एक सुगम आय का श्रोत प्रदान किया जा सकता है।

बिहार में मधुमक्खी पालन द्वारा शहद उत्पाद

बिहार के मधुमक्खी पालन ईकाईयों का शहद उत्पादन चक्र अक्टूबर–नवंबर में सरगुजा के शहद से प्रारंभ होकर जून में जामुन के शहद के उत्पादन तक चलता है। इसके बाद के तीन महीने जुलाई, अगस्त और सितम्बर अभाव काल होते हैं जब मधुमक्खियों को वातावरण से पर्याप्त मात्रा में भोजन नहीं मिलता है और उन्हें कृत्रिम भोजन के रूप में चीनी का घोल इत्यादि दिया जाता है। बिहार के मधुमक्खीपालकों द्वारा मुख्य रूप से चार प्रकार के शहद का उत्पादन किया जाता हैं ये हैं– लीची, करंज, सरसों और सरगुजा। इनके अलावा धनिया, जामुन, सहजन, सूरजमुखी, यूकेलिप्टस व कुछ और प्रकार के शहद का उत्पादन भी बिहार के मधुमक्खीपालक थोड़ी मात्रा में करते है।

उत्पादन के दृष्टिकोण से बिहार में लीची के शहद का स्थान सर्वोपरि है। बिहार के कुल शहद उत्पदन का लगभग 50–60 प्रतिशत लीची शहद होता है, इसे पश्चात् क्रमशः करंज, सरसों और सरगुजा के शहद का स्थान आता है जिनमें से प्रत्येक का उत्पादन कुल उत्पादन के 10 से 20 प्रतिशत तक होता है। ईडीए द्वारा किए गए सर्वेक्षणों के अनुसार मधुमक्खी पालन के दृष्टीकोण से बिहार के तीन प्रमुख जिलों मुजफ्फरपुर, वैशाली एंव पुर्वी चम्पारण के मधुमक्खीपालकों द्वारा वर्ष 2004–2005 के शहद उत्पादन चक्र (अक्टूबर 2004 से जून 2005) के दौरान कुल 2118 मिट्रिक टन शहद का उत्पादन किया गया।

आधुनिक मधुमक्खी पालन में मधुमक्खी बक्सों के जगह स्थानान्तरण का बहुत महत्व है। वर्ष पर्यन्त अधिकाधिक शहद उत्पादन के लिए मधुमक्खी के बक्सों को मौसम और भोजन की उपलब्धता के अनुसार एक जगह से दूसरे जगह स्थानांतरित किया जाना आवश्यक होता है। बिहार के मधुमक्खीपालक मधुमक्खी बक्सों के स्थानांतरण के मामले में काफी प्रगतिशील हैं और मधुमक्खियों को उचित भोजन उपलब्ध करान हेतु अपने मधुमक्खी बक्सों को झारखंड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान तक ले जाते है जिसके परिणाम स्वरूप बिहार में मधुमक्खी पालन द्वारा औसत शहद उत्पादन (प्रतिवर्ष/बक्सा) लगभग 65 कि.ग्राम है जबकि भारत में शहद उत्पादन का राष्ट्रीय औसत (प्रतिवर्ष/बक्सा) मात्र 20 कि.ग्राम[2] है।

उत्पादन में साल दर साल वृद्धि हुई है। बिहार के तीन प्रमुख मधुमक्खी पालन केन्द्रों मुजफ्फरपुर, उपयुक्त समय पर स्थानांतरण और समुचित रखरखाव के कारण बिहार के मधुमक्खीपालकों द्वारा शहद उत्पादन में साल दर साल वृद्धि हुई है। बिहार के तीन प्रमुख जिलों मुजफ्फरपुर, वैशाली एवं पूर्वी चम्पारण के मधुमक्खीपालकों द्वारा विगत वर्षों में किए गए विभिन्न प्रकार के शहद उत्पादन का विवरण नीचे ग्राफ में दिया गया है।

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि बिहार में शहद उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। परंतु इस क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाओं जैसे– राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, बिहार एवं खादी और ग्रामोद्योग आयोग का मानना है कि वर्त्तमान शहद उत्पादन क्षमता बिहार के वास्तविक क्षमता 30–40 प्रतिशत मात्र है वर्तमान

में आवश्यक है इस उद्योग को प्रत्येक दिशा से समुचित सहयोग देकर बढ़ावा देने की ताकि राज्य में इस व्यवसाय के वास्तविक क्षमता का दोहन किया जा सके तथा बेरोजगारी और पलायन की समस्या को कम किया जा सके। कृषि विज्ञान केन्द्र, शिवहर के द्वारा पौधा संरक्षण के अंतर्गत मधुमक्खीपालन कार्यक्रम में 06 (छः) प्रशिक्षण दिया गया। प्रशिक्षण का विवरण निम्न तालिका दिया गया है।

क्रमांक सं0	माह/वर्ष	प्रशिक्षणार्थी की संख्या
1.	04.09.2012 से 10.09.2012	22
2.	04.10.2012 से 10.10.2012	22
3.	11.04.2013 से 13.0402013	25
4.	13.06.2013 से 19.06.2013	17
5.	13.02.2014 से 19.02.2014	22
6.	25.08.2014 से 30.08.2014	24

प्रशिक्षण उपरांत प्रमाण–पत्र भी दिया गया। मुख्यमंत्री मधुमक्खी पालन प्रशिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत 90 प्रतिशत अनुदान पर मौन बॉक्स कृषि विभाग के द्वारा उपलब्ध कराया गया। शिवहर जिले में सब्जी फल की अच्छी खेती की जाती हैं जो सफल मौनालय के लिए आवश्यक है। इस जिले में जहाँगीरपुर, आशोपुर एवं अदौरी गाँवों में सफलतापूर्वक मधुमक्खी पालन व्यवसाय चल रहा है।

प्रजातंत्र लोगों की, लोगों के द्वारा, और लोगों के लिए बनायीं गयी सरकार है।

– अब्राहमलिंकन

गोभी वर्गीय सब्जियों की वैज्ञानिक खेती

डा. आर. के. मंडल

कृषि विज्ञान केन्द्र, सिवान

इस वर्ग में फूलगोभी, पत्ता गोभी, तथा गॉठ गोभी, चाइनीज पात गोभी, स्प्राउटिंग ब्रोकली, ब्रुसल्स स्प्राउट आदि सब्जियॉ सम्मिलित है। मुख्यतः फूलगोभी, पत्ता गोभी, तथा गॉठ गोभी ही अधिक लोकप्रिय है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश की करीब 65–70 प्रतिशत आबादी कृषि एवं कृषि आधारित उद्योगो पर निर्भर है। बिहार राज्य के बटवारे के बाद राज्य की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर ही आधारित है।

पोष्टिक आहार प्रदान करने में सब्जियों की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत दुनिया में सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है परंतु हमारी उत्पादकता का स्तर काफी कम है। शीतकाल में उगायी जाने वाली सब्जियों मे इनका प्रमुख स्थान है बिहार के सभी जिलो में गोभीवर्गीय सब्जियो की खेती की जाती है।

फूल गोभी

गोभीवर्गीय सब्जियों में फूलगोभी का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। इसका उपयोग सब्जी, सूप, अचार, सलाद, बिरियानी, पकौड़ा इत्यादि बनाने में किया जाता है। साथ ही यह पाचन शक्ति को बढ़ाने में अत्यन्त लाभदायक है। यह प्रोटीन, कैल्सियम और विटामिन 'ए' तथा 'सी' का भी अच्छा श्रोत है।

जलवायुः– इसकी सफल खेती के लिए ठंडा एवं आर्द्र जलवायु सर्वोतम होती है। अधिक ठंडा और पाला का प्रकोप होने से फूलो को अधिक नुकसान होता है। शाकीय वृद्वि के समय तापमान अनुकूल से कम रहने पर फूलो का आकार छोटा हो जाता है। अच्छी फसल के लिए 15–20 डिग्री. तापमान सर्वोत्तम होता है।

भूमि एवं उसकी तैयारीः– फूलगोभी की खेती तो सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है, परन्तु अच्छी जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट भूमि जिसमें जीवाष्म की प्रचुर मात्रा उपलब्ध हो, काफी उपयुक्त है। इसकी खेती के लिए अच्छी तरह से खेत को तैयार करना चाहिए। इसके लिए खेत को 3–4 जुताई करके पाटा लगाकर समतल कर देना चाहिए।

उन्नत किस्मेंः– समय के आधार पर फूलगोभी को विभिन्न वर्गो में बॉटा गया है। इसकी स्थानीय तथा उन्नत दोनो प्रकार की किस्में उगायी जाती है। इन किस्मो पर तापमान एवं प्रकाश अवधि का बहुत प्रभाव पड़ता है। अतः इसकी उचित किस्मों का चुनाव और उपयुक्त समय पर बुवाई करना अत्यन्त आवश्यक है। यदि अगेती किस्मों को देर से और पिछेती किस्मों को जल्दी लगाया जायेगा तो दोनो में शाकीय वृद्वि

अधिक होगी फलस्वरूप फूला छोटा हो जायेगा और फूल देर से लगेगे। इस आधार पर फूलगोभी को तीन भागो में वर्गीकृत किया गया है।

1. अगेती प्रभेदः– जो सितम्बर से मध्य अक्टूबर तक तैयार हो जाती है।
2. मध्यम प्रभेदः– जो नवम्बर से मध्य दिसम्बर तक तैयार हो जाती है।
3. देर से तैयार होने वाली प्रभेदः– जो जनवरी से फरवरी तक तैयार हो जाती है।

उन्नत प्रभेद एवं फूल तैयार होने का समय

फूल तैयार होने का महीना	उन्नत प्रभेद	फूल निकलने एवं विकास का तापक्रम
सितम्बर– अक्टूबर	अर्ली कुवारी, सिन्थेटिक78, अर्ली पटना, पंजाब कुवारी	20–27 डिग्री सेल्सि.
अक्टुबर– नवम्बर	पूसा कतकी, पूसा दिपाली	20–25 डिग्री सेल्सि.
नवम्बर– दिसम्बर	पन्त शुभ्रा, पूसा हिमज्योती, उन्नत जपानी	16–19 डिग्री सेल्सि.
दिसम्बर– जनवरी	पूसा सिन्थेटिक, पूसा श्शुभ्रा, पंजाब जैन्ट26, पंजाब जैन्ट 35	12–16 डिग्री सेल्सि.
जनवरी– फरवरी	दनिया, पूसा स्नोवाल–1, पूसा स्नोवाल के–1, स्नोवाल–16	10–16 डिग्री सेल्सि.

पौधशाला तैयार करना

प्रतिरोपण एवं बीज दरः– फूलगोभी के बीज सीधे खेत में नही बोये जाते है। अतः बीज को पहले पौधशाला में बुवाई करके पौधा तैयार किया जाता है। एक हेक्टेअर प्रतिरोपन के लिए लगभग 75–100 वर्गमीटर में पौधे उगाना पर्याप्त होता है। पौधो को खेत में प्रतिरोपण करने के पहले एक ग्राम स्ट्रेप्टो साइक्लिन का 8 लीटर पानी में घोलकर 30 मिनट तक डुबाकर उपचारित कर ले। उपचारित पौधे को खेत में लगाना चाहिए।

प्रभेद	पौधशाला में बीज बोने का समय	खेत में लगाने का समय	बीज दर ग्राम/एकड़
अगात तैयार होने वाली	मध्य मई से अंतिम जून माह	मध्य जून से अंतिम जुलाई माह	200–250
मध्य समय में तैयार होने वाली	जुलाई से अगस्त माह	अगस्त से सितम्बर माह	150–175
देर से तैयार होने वाली	मध्य अगस्त – सितम्बर से अंतिम अक्टूबर माह	मध्य सितम्बर– अक्टूबर से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक	120–150

प्रभेद	पंक्ति से पंक्ति की दूरी	पौधा से पौधा की दूरी	पौधा की संख्या/ एकड़
अगात	45 सेमी.	45 सेमी.	19360
मध्यकालीन	60 सेमी.	45 सेमी.	14320
देर	60 सेमी.	60 सेमी.	10890

खाद एवं उर्वरकः– फूलगोभी की अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए खेत में पर्याप्त मात्रा में जीवांश का होना अत्यन्त आवश्यक है। खेत में 20–25 टन सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट रोपाई के 3–4 सप्ताह पूर्व अच्छी तरह मिला देना चाहिए। इसके अतिरिक्त 120 किलोग्राम नाइट्रोजन, 60 किलोग्राम फास्फोरस, एवं 40 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेअर की दर से देना चाहिए। नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा एवं फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम जुलाई या प्रतिरोपण से पहले खेत में अच्छी तरह मिला देना चाहिए तथा शेष आधी नाइट्रोजन की मात्रा दो बराबर भागों में बॉटकर खड़ी फसल में 30 और 45 दिन बाद उपरिवेशन के रूप में देना चाहिए।

सूक्ष्म पोषक तत्वो का मिट्टी में कमी का प्रभाव इसके फसल पर बुरा पड़ता है।

बोरानः– बोरान की कमी से फूलगोभी का खाने वाला भाग छोटा रह जाता है। इसकी कमी से शुरू में तो फूलगोभी पर छोटे–छोटे दाग या धब्बे दिखाई पड़ने लगते है तथा बाद में पूरा का पूरा फूल हल्का गुलाबी पीला या भूरे रंग का हो जाता है जो खाने में कड़ुवा लगता है। फूलगोभी एवं फूल का तना खोखला हो जाता है और फट जाता है, इससे फूलगोभी की उपज तथा मॉग दोनो में कमी आ जाती है। इसकी रोकथाम के लिए बोरेक्स 10–15 किलोग्राम/ हेक्टेअर की दर से अन्य उर्वरक के साथ खेत में डालना चाहिए।

मॉलीब्डेनमः– इस सूक्ष्म तत्व की कमी से फूलगोभी का रंग गहरा हरा हो जाता है और किनारे से सफेद होने लगती है। जो बाद में मुरझाकर गिर जाती है। इससे बचाव के लिए 1.0–1.50 किलोग्राम मॉलीब्डेनम / हेक्टेअर की दर से मिट्टी में मिला देना चाहिए। जिससे फूलगोभी का खाने वाला भाग अर्थात कर्ड पूर्ण आकृति को ग्रहण कर ले एवं रंग श्वेत अर्थात उजला एवं चमकदार हो जाय तो पौधो की कटाई कर लेना चाहिए, देर से कटाई करने पर रंग पीला पड़ने लगता है और फूल फटने लगते है जिससे बाजार मूल्य घट जाता है।

खरपतवार नियंत्रणः– फूलगोभी में फूल तैयार होने तक दो–तीन निकाई–गुड़ाई से खरपतवार का नियंत्रण हो जाता है। परंतु व्यवसाय के रूप में खेती के लिए खरपतवारनाशी दवा स्टाम्प 3.00 लीटर को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेअर की दर से छिड़काव रोपन के पहले काफी लाभदायक होता है।

निकाई– गुड़ाई तथा मिट्टी चढ़ानाः– पौधे की जड़ो के समुचित विकास हेतू निकाई–गुड़ाई अत्यन्त आवश्यक है। इस क्रिया से जड़ो के आसपास की मिट्टी ढीली हो जाती है और हवा का आवागमन अच्छी तरह से होता है जिसका अनुकूल प्रभाव उपज पर पड़ता है। वर्षा ऋतु में यदि जड़ो के पास से मिट्टी हट गयी है तो चारो तरफ से जड़ो पर मिट्टी चढ़ा देना चाहिए।

सिंचाईः– पौधो की अच्छी वृद्वि के लिए मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में नमी का होना अत्यन्त आवश्यक है। सितम्बर के बाद 10 या 15 दिनो के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में 5 से 7 दिनो के अन्तराल पर सिंचाई करे।

उपजः– उचित प्रबंधन से लगभग 250 से 300 क्विंटल/ हेक्टेअर उपज प्राप्त होती है।

पत्ता गोभी

देश के मैदानी एवं पहाड़ी दोनो क्षेत्रो में पत्ता गोभी की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है। पत्ता गोभी में स्टोरेज क्षमता अधिक होने के कारण पत्ता गोभी को बाजार की आवश्यकतानुसार कुछ समय तक खेत में रोक भी सकते है अर्थात देर से कटाई कर सकते है। कटी हुई पत्ता गोभी का उपयोग सब्जी, कढ़ी, सलाद, अचार, पकौड़ा बनाने में किया जाता है। पत्ता गोभी में पाचन शक्ति को बढ़ाने की क्षमता होती है साथ ही मधुमेह रोगियो के लिये भी लाभदायक है। इसमें प्रचुर मात्रा में खनिज, जल एवं विटामिन पाया जाता है।

जलवायुः– अच्छी वृद्वि हेतू ठंडी और आर्द्र जलवायु अच्छी होती है। अधिक ठंडा एवं पाला का प्रकोप से गॉठो को नुकसान होता है। पौधो की वृद्वि के समय तापमान अनुकूल से कम रहने पर गॉठो का आकार छोटा हो जाता है। इसकी अच्छी पैदावार के लिए 15–20 डिग्री से0 तापमान सर्वोत्तम होता है।

भूमि एवं उसकी तैयारीः– पत्ता गोभी की खेती लगभग सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है। परंतु अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी जिसमें जीवांश प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो, इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम होती है।

उन्नतशील किस्मेंः– इसे रंग रूप एवं आकार के आधार पर तीन भागो में बॉटा गया है।

अगेती किस्मेंः– गोल्डेन एकर, प्राइड ऑफ इंडिया, पूसा मुक्ता।

मध्यम किस्मेंः– अर्ली ड्रमहेड, पूसा मुक्ता।

पिछेती किस्मेंः– पूसा ड्रमहेड, लेट ड्रमहेड, श्री गनेश गोल, हेरी रानी गोल।

खाद एवं उर्वरकः– पत्ता गोभी की अच्छी पैदावार के लिए खेत में पर्याप्त मात्रा में जीवांश का होना अत्यन्त आवश्यक है। अतः खेत में 20–25 टन गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट तथा 150 किलोग्राम नाइट्रोजन, 60 किलोग्राम फास्फोरस, एवं 60 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेअर की दर से आश्यकता होती है।

बुवाई का समयः– पत्ता गोभी की अगेती खेती के लिए अगस्त के अंतिम सप्ताह से सितम्बर मध्य तक नर्सरी में बीज की बुवाई कर देनी चाहिए। मध्यम एवं पछेती किस्मों के लिए 15 सितम्बर से अक्टूबर अंत तक बीज की बुवाई कर देनी चाहिए। बीज की बुवाई यदि समय पर की जाती है तो इसका सीधा प्रभाव उपज पर देखने को मिलता है।

बुवाई की विधिः– एक हेक्टेअर खेत में पौधा रोपन के लिए 75 से 100 वर्गमीटर में की पौधशाला में बीज की बुवाई करनी चाहिए। पौधशाला ऊॅचे स्थान पर बनाए जहॉ जल जमाव न हो। पौधाशाला की मिट्टी भुरभुरी होनी चाहिए और पर्याप्त मात्रा में गोबर की सड़ी हुई खाद अथवा वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग करना चाहिए।

पौध रोपनः– तैयार पौध को 45 सेमी0 कतार से कतार एवं 45 सेमी0 पौधे से पौधे की दूरी पर सांयकाल में पौध की रोपाई कर सिंचाई कर दे।

सिंचाई:– पौधो की अच्छी वृद्वि के लिए मिट्टी में पर्याप्त नमी का होना अत्यन्त आवश्यक है। वर्षाऋतु में यदि पर्याप्त नमी नही हो तो सिंचाई करते रहना चाहिए। सितम्बर के बाद 10–15 दिनो के अंतराल पर सिंचाई अवश्य करते रहना चाहिए।

निकाई–गुड़ाई तथा मिट्टी चढ़ाना:– पौधो की जड़ो के समुचित विकास के लिए निकाई– गुड़ाई अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा करने से जड़ो के पास की मिट्टी ढीली होती है और हवा का आवागमन अच्छी तरह से होता है। जिसका प्रभाव उपज पर पड़ता है।

खरपतवार नियंत्रण:– दो– तीन निकाई– गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण हो जाता है।

उपज:– उचित प्रबंधन से लगभग 200 से 250 क्विंटल/ हेक्टेअर उपज प्राप्त होती है।

गॉठ गोभी

फूलगोभी एवं पत्ता गोभी की तरह गॉठ गोभी भी शरदकालीन सब्जी है। फिर भी और सब्जी की तरह यह लोकप्रिय नही है। जमीन की सतह के ऊपर फूला हुआ तना खाने के काम आता है। इसमें कैल्सियम, मैगनीशियम, पोटैशियम, सोडियम, फास्फोरस तथा सल्फर प्रमुख रूप से पाये जाते है। इसमें विटामिन– ए तथा सी. भी पाया जाता है।

जलवायु:– यह ठंण्डे मौसम की फसल है। इसकी जलवायु आवश्यकता लगभग फूल गोभी की ही तरह होती है।

भूमि एवं उसकी तैयारी:– गॉठ गोभी की खेती लगभग सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है। परंतु अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम है।

उन्नत किस्में

व्हाइट वियना:– यह अगेती किस्म है। इसके पौधे बौने होते है, गॉठे हरी गोलाकार चिकनी एवं मध्यम आकार की होती है।

पर्पिल वियना:– यह किस्म पिछेती है इसकी गॉठे बैंगनी गोलाकार चिकनी एवं मध्यम आकार की होती है।

खाद एवं उर्वरक:– गॉठ गोभी की अच्छी पैदावार के लिए खेत में पर्याप्त मात्रा में जीवाश्म की मात्रा बहुत आवश्यक है। अतः खेत में 15–20 टन गोबर की सड़ी खाद या वर्मीकम्पोस्ट तथा 100 किलोग्राम नाइट्रोजन, 60 किलोग्राम फास्फोरस, एवं 100 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेअर की दर से आश्यकता होती है।

बीजदर:– अगेती किस्म के लिए 800 ग्राम बीज/ हेक्टेअर की आवश्यकता होती है तथा पिछेती खेती के लिए 600 ग्राम बीज की जरूरत होती है।

बुवाई का समय:– बुवाई का समय वही है जो फूलगोभी एवं पत्ता गोभी की होती है।

बुवाई की विधिः– इसके लिए बुवाई की विधि वही जो फूलगोभी एवं पत्ता गोभी की होती है।

पौध रोपनः– तैयार पौध को 30 सेमी0 कतार से कतार एवं 30 सेमी0 पौध से पौध की दूरी सांयकाल के समय रोपाई कर सिंचाई करे।

सिंचाईः– आवश्यकतानुसार सिंचाई करे।

निकाई– गुड़ाईः– जब पौधे 20–25 सेमी0 का हो जाये तो मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रणः– दो– तीन निकाई– गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण हो जाता है।

उपजः– उचित प्रबंधन से लगभग 20 से 24 टन/ हेक्टेअर गॉठ गोभी की उपज प्राप्त की जा सकती है।

गोभीवर्गीय सब्जियो के रोग एवं कीट

प्रमुख कीड़े एवं रोकथामः– गोभीवर्गीय सब्जियो में मुख्य रूप से लाही, गोभी मक्खी, हीरक पृष्ठ कीट, तम्बाकू की सूड़ी आदि कीड़ो का प्रकोप होता है। लाही कोमल पत्तियों का रस चूसती है। खासकर जाड़े के समय कुहासा या बदली लगी रहे तो इसका आक्रमण अधिक होता है। गोभी मक्खी पत्तियों में छेदकर अधिक मात्रा में खा जाती है। हीरक पृष्ठ कीट के सूड़ी पत्तियों के निचली सतह को खाते है और छोटे छिद्र बना लेते है। जब इसका प्रकोप अधिक होता है तो छोटे पौधो की पत्तियां बिल्कुल समाप्त हो जाती है। जिससे पौधे मर जाते है। तम्बाकू की सूड़ी के वयस्क मादा कीट पत्तियो की निचली सतह पर झुन्ड में अंण्डे देती है। 4–5 दिनो के बाद अण्डो से सूड़ी निकलती है और पत्तियों को खा जाती है। सितम्बर से नवम्बर तक इसका प्रकोप अधिक होता है। उपरोक्त सभी कीड़ो का जैसे ही आक्रमण शुरू हो तो नुवाक्रान, रोगर, थायोडान किसी भी कीटनाशी दवा का 1.5 मि0 ली0/ लीटर पानी की दर से घोलकर आवश्यकतानुसार छिड़काव करना चाहिए।

रोग एवं नियंत्रणः– गोभीवर्गीय सब्जियो में मुख्य रूप से गलन रोग, काला विगलन, पर्मचित्ती, अंगमारी, पत्ती का धब्बा रोग तथा मृदु रोमिल, आसिता रोग लगते है। वह फफूँदी के कारण होता है। यह रोग पौधा से फूल बनने तक कभी भी लग सकता है। पत्तियों की निचली सतह पर जहॉ फफूँद दिखते है उन्ही के ऊपर पत्तियों के ऊपरी सतह पर भूरे धब्बे बनते है। पर जो कि रोग के तीव्र हो जाने पर आपस में मिलकर बड़े धब्बे बन जाते है। काला गलन नामक रोग भी काफी नुकसानदायक होता है। रोग का प्रारंभिक लक्षण 'अ' आकार में पीलापन लिये होता है। रोग का लक्षण पत्ती के किसी किनारे या केन्द्रीय भाग से शुरू हो सकता है, यह बैक्टीरिया के कारण होता है। इससे बचाव के लिए रोपाई के समय बिचड़े को स्ट्रेप्टोसाइक्लीन या प्लेन्टोमाइसीन के घोल से उपचारित कर ही खेत में लगाना चाहिए। आधा ग्राम दवा एक लीटर पानी में घोलना चाहिए। बाकी सभी रोगो से बचाव के लिए फफूँदनाशक दवा इन्डोफिल एम–45 की दो ग्राम या ब्लाइटाक्स की तीन ग्राम मात्रा को एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रों में फल एंव सब्जी भण्डारण की सरल विधियाँ

डा. सुधीर दास एवं ई. शैलेश कुमार

कृषि विज्ञान केन्द्र, बिरौली,समस्तीपुर

ग्रामीण क्षेत्रों में फलों एंव सब्जियों का उचित भण्डारण न होने के कारण तुड़ाई के बाद जल्दी खराब होने लगती है जिससे लगभग कुल उत्पादन का 20–25: भाग उपयोग से पूर्व बेकार हो जाता है। यदि इन फल–सब्जियों को खेत में तुड़ाई के बाद ठण्डे स्थानों पर भण्डारित किया जाये तो इनमें होने वाली जैविक क्रियाएं मन्द पड़ जायेंगी और लम्बे समय तक ये खाने योग्य बने रहेंगे। फल एवं सब्जियों को खेत पर सुरक्षित रखने हेतु किसान के पास उपलब्ध ईंट, रेती, बाँस, खस–खस की टाटी और प्लास्टिक की चदद्र से शुन्य ऊर्जा षीतलन कक्ष का निर्माण कर यह कार्य आसानी से किया जा सकता है।

फल एवं सब्जियों पर अधिक तापमान का प्रभाव

- अधिक तापमान के कारण फल एवं सब्जियों की सतह से पानी वाष्प के रुप में निकल जाता है जिससे फल एवं सब्जियों की ताजगी खत्म हो जाती है तथा भार में गिरावट आ जाती है।
- फल एवं सब्जियों में पानी की मात्रा (70–90:) अधिक होने के कारण सूक्ष्म जीवों के प्रभाव से सड़न उत्पन्न हो जाती है।
- बाह्य वातावरण के प्रभाव से फल व सब्जियों की गुणवत्ता में कमी, ताजगी एवं ग्राहक आकर्षण में गिरावट आ जाती है तथा कच्चे तोड़े गये फलों में स्वाद व रंग का विकास भी नहीं हो पाता है।

शून्य ऊर्जा शीतलन कक्ष की उपयोगिता

शून्य ऊर्जा शीतलन कक्ष ग्रामीण क्षेत्रों में किसान के घरेलू उपयोग से लेकर फार्म उत्पादों को भण्डारित रखने तथा सब्जी एवं फल बेचने वाले हॉकर्स के यहाँ बची सब्जियों को लम्बे समय तक सुरक्षित रखने के काम में लिया जा सकता है।

- घरेलू उपयोग हेतु सामान्यतः उर्जा शीतलन कक्ष का तापमान गर्मियों में बाह्य वातावरण से 6–80 सेल्सियस तक कम रहता है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में जहां घरेलू खाद्य सामग्री के लिए रेफ्रिजिरेटर की सुविधा नही है वहां परिवार की खाद्य साम्रगी–दही, दूध, छाछ, सब्जियों व फल शीतलन कक्ष में रखे जा सकते हैं जिससे इन उत्पादों को अधिक समय तक खाने योग्य रखा जा सकता है।
- फार्म उपयोग हेतु: ऐसे छोटे किसान जिनका दैनिक सब्जी व फल उत्पादन काफी कम होने के कारण किसान अपने उत्पाद को मण्डी तक ले जाने के खर्च से बचने के लिए ग्रामीण बाजार में औने–पौने

दाम में बेच देते हैं। इस प्रकार के किसान प्रतिदिन फलें एवं सब्जियों को तोड़कर शीतलन कक्ष में भण्डारित करके 3–4 दिन में एक बार बाजार जाकर उन सब्जियों को बेच कर अधिक लाभ कमा सकते है।

* फुटकर विक्रेताः फुटकर विक्रेता दिन भर अपनी सब्जियों एवं फलों को बेचते है। अधिक तापमान के कारण सब्जियाँ एवं फल षाम तक खराब होने लगती है। अगर शाम को बचे हुए फल एवं सब्जियों को ऊर्जा शीतलन कक्ष में भण्डारित करके रखा जाये तो अगले दिन बाहर रखे उपादों से काफी अच्छी अवस्था में बने रहतें हैं जिससे अच्छा बाजार भाव भी मिलता है तथा फल व सब्जियों खराब भी नहीं होती।

एक ही जगह दुकान व टोकरी लगाकर बेचने वाले फल व सब्जी विक्रेता को तो केवल नमूने के तौर पर फल व सब्जियों को बाहर रखना चाहिए तथा अतिरिक्त उत्पाद को शीतलन कक्ष में रखने सें काफी लाभ होता है और फल व सब्जियों लम्बे समय तक खराब नहीं होते हैं।

उर्जा शीतलन कक्ष का निर्माण

आवश्यक सामग्री एवं खर्च

क्र. सं.	सामग्री	मात्रा	दर (रु. प्रति नग)	योग(रु.)
1.	ईट	650	6	3900.00
2.	बजरी	10 तगारी	15	150.00
3.	सिमेंट	बैग	350/बैग	175.00
4.	नदी का रेत	15 तगारी	20	300.00
5.	अन्य सामग्री (बाँस, खस–खस, टाट, घास आदि)	–	–	500.00
कुल योग				5025.00

शून्य उर्जा शीतलन कक्ष में फल सब्जियों को सुरक्षित रहने की अवधि का तुलनात्मक विवरण (तापमान 26 डिग्री सेल्सियस से 38 डिग्री सेल्सियस व आपेक्षिक आर्द्रता 70–90 प्रतिशत)

क्र. सं.	सामग्री	कक्ष के बाहर सुरक्षित अवधि (दिन)	कक्ष के अन्दर सुरक्षित अवधि (दिन)
1.	टमाटर	2.3	6.7
2.	बैंगन	3.4	7.9
3.	लौकी	3.4	7.8
4.	खीरा	4.5	8.10

क्र. सं.	सामग्री	कक्ष के बाहर सुरक्षित अवधि (दिन)	कक्ष के अन्दर सुरक्षित अवधि (दिन)
5.	मिर्च	3.4	6.7
6.	ग्वार फली	3.4	7.6
7.	आलू	8.10	30.40
8.	केरी/कच्चे आम	6.8	10.13
9.	नींबू	3.5	15.20
10.	आम	2.3	6.8
11.	सन्तरा/नारंगी	8.10	25.30

फल व सब्जी को सुरक्षित रखने के लिए शून्य उर्जा शीतलन कक्ष का निर्माण हवादार और छायादार खुले स्थान पर करना चाहिए। ईंटों को जमाकर 165 से. मी. ग 115 से. मी. आकार का एक आयताकार चबूतरे का निर्माण करना चाहिए। ईंटो के मध्य स्थान में बालू रेत भरकर तथा दोनों दिवारों के मध्य 7–8 से. मी. तक का स्थान रखना चाहिए जिसमें बाद में नदी की रेत भरी जाती है। दोहरी दिवार उँचाई 60–65 से. मी. तक रखनी चाहिए ताकि किसी भी सामग्री को आसानी से रखा व निकाला जा सके। आवश्यकतानुसार इसकी लम्बाई में कुछ परिवर्तन तो किया जा सकता है परन्तु चौड़ाई उतनी ही रखनी चाहिए जिससे ठंडक भी बनी रहे तथा फलों व सब्जियों की टोकरियों को निकालने व रखने में आसानी हो।

ईंट की दिवार बनाने के लिए चिकना गाड़ा या फल्की सिमेंट–बजरी का मिश्रण (1:10) का उपयोग करना चाहिए। बीच के खाली स्थान में नदी की रेत कंकरीट के साथ भरना चाहिए। उपर का ढक्कन बाँस, बोरी, घास जवसा व खस खस से बनी टाटी का होना चाहिए। इस ढक्कन की लम्बाई और चौड़ाई पूरे भण्डारण कक्ष से थोड़ी ज्यादा होनी चाहिए। लगातार पानी की पूर्ति हेतु 15–20 लीटर की क्षमता के मटके (जिस पर नल लगा हो) को तीन लकड़ियों के सहारे से भूमि से 6–7 फुट की उंचाई पर स्थापित करना चाहिए। नल को एक पाइप द्वारा ईंटो के मध्य भाग से जोड़ना चाहिए तथा पाईप पर 15–15 से .मी. की दूरी पर बारीक छेद कर देना चाहिए जिससे जल का रिसाव बूँद–बूँद होता रहे। अधिक गर्मी के दिनों में दिन में 2–3 बार रेत व ढक्कन को तर करना होता है।

फल व सब्जी का भंडारण – फल व सब्जी को 10–15 कि. ग्रा. क्षमता की अलग–अलग बाँस की टोकरियों में भरकर रखना चाहिए। प्रत्येक टोकरी को गीली टाट से ढँकना चाहिए। टोकरियों की संख्या अधिक हो तो लकड़ी की तिपाईयों का उपयोग कर कक्ष के ढक्कन को अच्छी तरह से तर कर के ढँक देना चाहिए और ढक्कन को दिन में 3–4 बार अच्छी तरह से गीला करना चाहिए। जहाँ तक संभव हो ढक्कन को बार–बार नहीं खोलना चाहिए ।

शीतलन का सिद्धांत – शीतलन कक्ष वाष्पीकरण के लिए आवश्यक गुप्त उष्मा के सिद्धांत पर आधारित है। इसमें जब गर्म हवाऐं शीतलन कक्ष की बाहरी सतह से टकराती है तो सतह पर उपस्थित नमी का

वाष्पीकरण होता रहता है। वाष्पीकरण के लिए आवश्यक गुप्त उष्मा कक्ष के आंतरिक भाग से पहुँचती है जिससे अन्दर का तापमान गर्मियों में बाहरी तापमान से 6–8 डिग्री सेल्सियस कम होने से आद्रता अंश लगभग 85–90 प्रतिशत तक रहता है जो कि उष्ण व उपोष्ण फल व सब्जियों के सुरक्षित भंडारण के लिए सहायक है। सर्दियों में जब तापमान कम हो जाता है ऐसे में कक्ष का तापमान बाहरी तापमान से लगभग 4–6 डिग्री सेल्सियस तक ज्यादा रहता है ऐसे में फलों और सब्जियों को भीषण सर्दियों के प्रकोप से भी बचाया जा सकता है।

शून्य ऊर्जा शीतलन कक्ष में साधारण गर्मियों में तापमान 26 डिग्री सेल्सियस से 38 डिग्री सेल्सियस के मध्य रहता है तथा आपेक्षित आर्द्रता 70–90 प्रतिशत तक पायी जाती है। इन परिस्थितियों में भी पत्तेदार सब्जियों जैसे–पालक, धनिया, चौलाई, सलाद को 2–3 और अन्य फल व सब्जियों को 7–15 दिनों तक बिना गुणवत्ता हानि के सुरक्षित भण्डारित रखा जा सकता है।

* अधिक नमी होने के कारण सब्जियों व फलों की बाहरी सतह से पानी का नुकसान न होने से फल व सब्जियों का भार व ताजगी बनी रहती है ।
* कम तापमान व अधिक आर्द्रता के कारण सूक्ष्म जीवों की कार्याविधि कम होने से फल व सब्जियों में सड़न नहीं होती है।
* कम पके फलों को कक्ष में रखने से स्वाद व रंग का विकास भी अच्छा होता है ।

लौकी– कृषि विज्ञान केन्द्र, बिरौली समस्तीपुर पर स्थित उर्जा शीतलन कक्ष में जुलाई माह (42^0 सेन्टीग्रेड तापमान, 25% आपेक्षिक आर्द्रता) में लौकी को भंडारण किया गया जबकि अन्य भण्डारण परिस्थितियों की अपेक्षा शीतलन कक्ष में लम्बे समय तक (15 दिन) लौकी खाने योग्य पाई गई जबकि बाहय वातावरण में 7 दिन तक ही अच्छी अवस्था में भण्डारित रही।

टी. 1 – खुले वातावरण में (42 डिग्री सेटीग्रेड तापमान, 25 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता)

टी. 2 – कमरे के तापमान पर (40 डिगी सेटीग्रेड तापमान, 32 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता)

टी. 3 – उर्जा शीतलन कक्ष पर (35 डिगी सेटीग्रेड तापमान, 90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता)

भिंडी – उर्जा शीतलन कक्ष में जब भिंडी को भंडारित किया गया तो बाहरी वातावरण में 3 दिन तक रखने योग्य अवस्था में तथा उर्जा शीतलन कक्ष में 7 दिन तक ताजा नर्म एवं खाने योग्य अवस्था में पाई गई तथा उसमें भार हानि भी काफी कम हुआ।

टी. 1 – खुले वातावरण में (42 डिग्री सेटीग्रेड तापमान, 25 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता)

टी. 2 – कमरे के तापमान पर (40 डिगी सेटीग्रेड तापमान, 32 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता)

टी. 3 – उर्जा शीतलन कक्ष पर (35 डिगी सेटीग्रेड तापमान, 90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता)

लौकी की वैज्ञानिक विधि से व्यवसायिक खेती

राहुल कुमार वर्मा
कृषि विज्ञान केन्द्र, हलसी

लौकी भारतवर्ष के लिए अत्यन्त लोकप्रिय सब्जी है। इसके अलावा लौकी की खेती इथोपिया, अफ्रीका, सेण्ट्रल अमेरिका और विश्व के गरमा क्षेत्रों मे की जाती है।

लौकी अत्यन्त ही सुपाच्य, पौष्टिक, स्वास्थ्यवर्द्धक एवं औषधीय गुणों से भरपुर लोकप्रिय सब्जी है। यह शीतल, पित्तनाशक, हृदय एवं मूत्र संबंधी रोगों में काफी लाभदायक है।

लौकी का गुदा कब्ज, खांसी, रतौंधी को ठीक करने के लिए और जहर का एण्टीडोट बनाने में किया जाता हैं इसका प्रयोग सब्जी, मिठाई (खीर, हलवा, बर्फी, मेठा) और आचार बनाने में किया जाता है। इसके शुष्क फल को सब्जी में और फल के सुखे, कठोर सेल का उपयोग कटोरी, बोतल, पात (Container) और संगीत का सामान बनाते हैं। लौकी में मुख्य रूप से प्रोटीन (0.25 प्रतिशत), कार्बोहाइड्रेट (2.9 प्रतिशत), वसा (0.5 प्रतिशत) और विटामीन–सी (11 प्रतिशत) प्रति 100 ग्राम मात्रा में पायी जाती है।

1. **भूमि एवं जलवायु –** लौकी की खेती के लिए सामान्यतः गर्म एवं आर्द्र जलवायु उपयुक्त होती है। इसकी खेती सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है परन्तु अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए बलुई दोमट मिट्टी, जिसमें जिवाश्म पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो, उत्तम मानी जाती है। भूमि का चयन करते समय यह ध्यान देना चाहिए कि उसमें जल निकास का उचित प्रबन्ध हो और मिट्टी का पी०एच० मान 6 – 7 के बीच में हो। 18 – 22^{0}C भूमि का तापमान पौधे के विकास के लिए अति उत्तम होती है। पौधे के विकास के लिए तापमान 24 – 27^{0}C होना चाहिए।

2. **उन्नतशील किस्में –** उपज एवं गुणों के आधार पर उन्नतशील प्रजातियाँ निम्न प्रकार हैं :

i) पुसा समर प्रोलिफिक लांग
- इसका फल 40 – 50 सेमी० लम्बा होता है और पीले हरे रंग का होता हैं।
- यह गरमा एवं बरसात दोनों मौसम में लगाये जा सकते हैं तथा इसकी उपज 15 टन/हे० है।

ii) अर्का बहार
- यह प्रभेद IIHR से निकला है। इसका फल सीधा, बेलनाकार, मध्यमाकार, हल्के हरे रंग का चमकीला होता है।
- यह 120 दिन की फसल है तथा इसकी उपज 40 टन/हे०

iii) पुसा नवीन
- यह प्रभेद IARI से निकली हैं
- इसका फल हरा, चिकना और हलके रेसेदार होता है।
- यह 30–35 सेमी० लम्बा तथा 6–7 सेमी० व्यास, बेलनाकार होता है।
- इसका वजन मुख्यतः 850 ग्राम का होता है। और इसकी पहली तुड़ाई 60 दिन के बाद होती है। उपज 30टन/हे.

iv) सम्राट
- फल 30 – 40 सेमी० लम्बा, हरा और बेलनाकार होता है।
- इसका वजन मुख्यतः 850 ग्राम का होता है और इसकी पहली तुड़ाई 60 दिन बाद होता है।
- इसकी उपज क्षमता 30 टन/हे. है।

v) नरेन्द्र ज्योति
- फल 30 – 40 सेमी० लम्बा, हरा और बेलनाकार होता है।
- इसका वजन मुख्यतः 850 ग्राम का होता है और इसकी पहली तुड़ाई 60 दिन बाद होता है।
- इसकी उपज क्षमता 30 टन/हे० है।

vi) एन.डी.बी.जी. 132
- इसका फल लम्बा एवं आकर्षक होता है।
- इसका पहला फल बुआई के 60 दिन पश्चात् तोड़ने लायक हो जाता है।
- इसकी उपज क्षमता 43–45 टन/हे० है।

vii) काशी बहार (VRH 1)
- यह प्रभेद IIVR से निकली है। फल हल्के हरे रंग का सीधा 30–35 सेमी० लम्बा तथा 780–850 ग्राम का होता है। औसत उपज 55 – 55 टन/हे. है। यह गरमा और बरसात दोनों मौसम में होता है।

गोलाकार प्रभेद

i) पूसा समर प्रोलिफिक राउण्ड :
- हरे, गोल रंग का फल होता है।
- यह गरमा एवं बरसात मौसम की फसल है।

ii) पंजाब राउण्ड :
- यह बरसात मौसम के लिए अच्छी प्रभेद है।
- चमकीले हरे रंग का होता है।

iii) पंजाब कोमल :
- फल अण्डाकार, मध्यम आकार, हरे रंग का होता है।
- डपज क्षमता 40–45 टन/हे.
- एक लत में 12 फल लगते हैं।
- पहली तुड़ाई 70 दिन पश्चात् करते हैं।

संकर किस्में (Hybrid) : पूसा हाइब्रिड – 3, नरेन्द्र शंकर लौकी–4, आजाद शंकर लौकी–1, राजेन्द्र चमत्कार, पूसा मेघदूत, पूसा मंजरी।

बोतल आकार वाली प्रभेद :

नरेन्द्र धारीदार – धारीदार, हरे रंग का एवं बोतल आकार की होती है एवं उपज 30–35 टन/हे०।

नरेन्द्र रश्मि – बोतल आकार की सफेद गूदा और औसतन वनज 1 किग्रा., उपज 27–31 टन/हे०।

बीज दर/ बीज की मात्रा : 5 किग्रा. /हे०

- बुआई का समय : लौकी की बुआई गरमा एवं बरसात मोसम में की जाती है। गरमा में बुआई का समय दिसम्बर – जनवरी एवं बरसात मौसम में बुआई का समय जून – जुलाई। बीज को बोने से पहले उसे शोधित करके बुआई करें। बीज को पानी में 12–24 घंटे तक भिंगो कर छोड़ देते हैं जिससे की उसकी अंकुरण क्षमता बढ़ जाए।

- बीजोपचार : प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि लौकी का बीज को एसिटिक एसिड के 600 पी० पी० एम० में भिंगोकर बुआई की जाए तो बीज का जमाव बढ़ सकता है तथा पैदावार में वृद्धि हो जाती है।

- रोपाई : 2–3 मीटर कतरों की दूरी एवं 1 मीटर पौध से पौध की दूरी पर गढ्ढे बनाते हैं तथा गढ्ढे में 5 किग्रा. गोबर की खाद तथा उर्वरकों का मिश्रण 20–25 ग्राम डालते हैं। वर्षा ऋतु की फसल को लकड़ी अथवा मचान पर चढ़ाना चाहिए।

- उर्वरक : लौकी की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 30 किग्रा. नाइट्रोजन 40–60 किग्रा. फास्फोरस एवं पोटाश का प्रयोग करें। इसके साथ–साथ 10 टन/हे. सड़ी गोबर की खाद का भी प्रयोग करना चाहिए।

- सिंचाई : थालों में आवश्यकता अनुसार सिंचाई देना चाहिए। जब पौधे छोटे–छोटे रहते हैं उस समय एक या दो सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए गर्मियों में अधिक सिंचाई की जरूरत पड़ती है। 3–4 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। बरसात के मौसम में सिंचाई आवश्यकता पड़ने पर की जाती है और बरसात का मोसम लौकी फसल के लिए सबसे अच्छा माना जाता है।

- पौधा वृद्धि नियामक का प्रयोग (Plant Growth Regulator) : लौकी में अधिक उपज के लिए नर व मादा पौधों का संतुलन खेत में बनाये रखना चाहिए। इसका अनुपात 1 : 3 होना चाहिए। मादा पुष्प की वृद्धि के लिए मौलिक हाइड्राजाइड 400 पी०पी०एम० का स्प्रे करते हैं। फल समुच्चय बढ़ोत्तरी के लिए 2 और 4 पत्ती स्टेज पर इथेरल (100 – 150 पी०पी०एम०), मौलिक हाइड्राजाइड (400 पी०पी०एम०), टीबा (50 पी०पी०एम०) का दो बार स्प्रे करें।

- निराई–गुड़ाई व खरपतवार नियंत्रण : लौकी की फसल में बुआई से लेकर फल लगने की अवधि तक अपवश्यकतानुसार 2–3 निकाई–गुड़ाई करके खेत को खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए।

निकाई–गुड़ाई करके थालों पर मिट्टी चढ़ा देने से पौधों की लतायें तेजी से विकसित होती है। रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण के लिए 3.3 लीटर मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हे० की दर से बीज लगाने के 2 दिन बाद छिड़काव करना चाहिएं इससे विस्तृत क्षेत्र में तथा कम लागत से खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है।

* फल की तुड़ाई एवं उपज : पौधों में फल के 60 दिन बाद आना शुरू हो जाता हैं परन्तु यह मोसम और प्रभेद पर निर्भर करता है। पौधों पर फल लगने के 12–15 दिन बाद पूर्ण विकसित हरे फलों की तुड़ाई करनी चाहिए। समय से फलों की तुड़ाई करते रहने से फल अधिक समय तक लगते रहते हैं। फलों की तुड़ाई 3–4 दिन के अन्तराल पर करते रहना चाहिए। इसकी उपज 250–300 क्विंटल/हे० तथा संकर प्रभेद 400–500 क्विंटल/हे० होता है।

प्रमुख कीट एवं रोग – कद्दू वर्गीय सब्जियों में लगने वाले रोग एवं कीट निम्न हैं जो प्रमुख बिमारियाँ उत्पन्न करती है। जिससे उत्पादन एवं समय की अधिक क्षति होती है।

आर्द्र पतन – आर्द्र पतन एक ऐसा रोग है जो लगभग सभी शाक–सब्जियों की नई पौधों को प्रभावित करती है।

* इस रोग के लक्षण :

- बीज का अंकुरण न होना
- अंकुरण के बाद भूमिगत बीजांकुर का बिगलन होने और बीांकुर के बाहर निकलने पर पौध गलन होने के रूप में दिखाई देते हैं।

* रोकथाम :

- बीज बोने से पूर्व बीज उपचारित करें। इसके लिए कार्बेन्डाजिम 1.5 ग्राम/किग्रा. बीज अथवा वीटावैक्स 2 ग्राम/किग्रा. से करें।

3. **मृद ऐमिल आसिता :** कद्दु वर्गीय सभी सदस्य इस रोग से ग्रसित होते हैं।

* रोग के लक्षण : इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं, रोगी पत्तियों की उपरी सतह पर पीले रंग के कोणीय धब्बे बनते हैं। वातावरण में अधिक आद्रता होने पर धब्बों के निचली सतह पर रोग जनक कवक की वृद्धि होने लगती हैं इस वृद्धि का रंग नील–लोहित होता है। रोगी पौधे बौने हो सकते हैं।
* रोकथाम : रोग से ग्रसित रोगी फुलों को काट देना चाहिए उसके उपरान्त 2–3 बार डाइथेन एम–45 या डाइथेन जेड–78 का 2.5 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

4. **चूर्णित आसिता** (Powdery mildew) **:** यह लौकी फसलों को अधिक हानि पहुँचाता है। इस रोग में सर्वप्रथम पत्तियों की उपरी सतह एवं नये तनों पर सफेद चूर्जी धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं और

बाद में धब्बे भूरे रंग के हो जाते हैं कुछ विशेष परिस्थितियों में रोग का आक्रमण फल पर भी होता है। रोग फैलने के लिए उपलब्ध अनुकूल वातावरण में रोगी पत्तियाँ समय से पहले गिर जाती है, जिसके फलस्वरूप पौधे की वृद्धि रूक जाते हैं और फल को अधिक हानि होती है।

- रोकथाम : सल्फेक्स 3 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव या कैराथन 2 लीटर/हे० को 800–1000 लीटर पानी में मिलाकर 2–3 बार छिड़काव करने से इस रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

5. **चारकोल विलगन :** यह कद्दु वर्गीय सभी फसलों पर प्रकोप डालता है। इसके लक्षण फल पर दिखाई देते हैं, फलों पर गहरे भूरे या काले रंग के धब्बे बनते हैं। रोग के लिए अनुकुल वातावरण उपलब्ध होने पर ये तेजी से बढ़ते हैं और कभी–कभी फल के आधे भाग को घेर लेते हैं।

- रोकथाम :
  - रोगी फलों को तोड़ देना चाहिए।
  - कार्बेण्डाजिम 1.5 किग्रा. दवा को 200 लीटर पानी में घोलकर 2 बार स्प्रे करने पर इस रोग से नियंत्रण पाया जा सकता है।

6. **सर्कास्पोरा पर्ण चित्ति रोग :** इस रोग में पत्तियाँ पहले सूक्ष्म जलसिक्त विक्षत के रूप होती है। ये जलसिक्त विक्षत शीघ्र ही बढ़ते हैं। ये गाढ़े भूरे रंग के कोणीय आकार तथा पत्तियों के सिराओं के बीच पाये जाते हैं। यदि रोग का प्रकोप अत्यधिक हुआ तो सम्पूर्ण पौधा मुरझा जाता है।

- रोकथाम :
  - फसल चक्र अपनाना चाहिए।
  - रोग ग्रस्त पौधों को निकाल देना चाहिए।
  - फफूंदनाशक दवा जैसे – जायरम अथवा कार्बेण्डाजिम 1.5 किग्रा./800 लीटर पानी में प्रति हेक्टेयर छिड़काव करना चाहिए।

7. **मोजेक :** इस रोग से विशेष हानि लौकी, कद्दु एवं खरबुज को होती है।

- रोग के लक्षण : इस रोग के लक्षण परपोषी एवं उसकी संक्रमण अवस्था तथा वाइरस के विभेद आदि पर निर्भर करता है। वाइरस का संक्रमण पौधे के अवस्था पर हुआ तो फसल को अधिक हानि होती है। मोजेक रोग के लक्षण पौधे के सभी भागों पर पाये जाते हैं। यदि इसका संक्रमण बीज पत्रिय अवस्था में हो गया तो बीज पत्र पीले पड़ जाते हैं। रोगी पौधे छोटे ही रह जाते हैं।
- रोकथामः यह रोग एफिड कीट के कारण फैलता है। अतः एफिड का नियंत्रण ही इसके रोकथाम के लिए आवश्यक है। इसके लिए इमिडाक्लोरपिड 1.0 मीली०/लीटर पानी में घोलकर 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करते रहना चाहिए। रोगी पौधों को उखाड़कर फेंक दें। बीज को उपचारित करके ही बोयें।
- कीटः–

- ▷ फल मक्खी : यह मक्खी बढ़ रहे कोमल फलों के छिलके के निचे अण्डे देती है, जिसमें लार्वा बढ़कर फलों को खाकर नष्ट कर देती है। अतः इस मक्खी के प्रकोप होते ही ''फेरोमेन ट्रेप'' (मिथईल यूजिनाल) चार प्रति एकड़ की दर से खेतों में लगायें।
- ▷ लाल भृंग : लाल रंग का व्यस्क भृंग का प्रकोप मार्च–अप्रैल महीने में छोटे पौधे में होता हैं। यह पत्तियों, फलों एवं अंकुरित बीज को खा जाता है। अतः इसके रोकथाम ''नुवाकान'' के 0.2 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करना चाहिए अथवा कार्बाराइल धूल 1.0 प्रतिशत का बुरकाव करना चाहिए।

* एफिड : ये पत्तियों के रस को चूसकर पत्तियों को सुखा देते हैं। अतः इसके रोकथाम के लिए ''इमिडाक्लोरपिड'' 1 मिली०/3 लीटर पानी में छिड़काव करें।

लौकी का बीज उत्पादनः

सब्जी फसलों में कद्दू जाति का परिवार सबसे बड़ा है और इसमें 15–20 प्रकार की सब्जियों की खेती हमारे देश में होती हैं। लौकी की खेती उत्तरी भारत की मैदानी भागों में बसंत–गर्मी में फरवरी से जून तथा वर्षा ऋतु में जुलाई से नवम्बर तक की जाती है।

लौकी की खेती से किसान थोड़ी देखरेख के साथ–साथ अच्छी कमाई कर सकते हैं। आज कल लौकी की संकर किस्में भी खेती के लिए उपलब्ध है। किसी भी फसल की अच्छी उपज हेतु उन्नतशील किस्में तथा अच्छी गुणवत्ता वाला बीज होता है। किसान अगर थोड़ा ध्यान दें और जानकारी लें तो लौकी के उन्नत गुणों वाले बीजों का उत्पादन स्वयं कर सकते हैं और व्यवसाय कर सकते हैं।

उन्नत प्रभेदः

पूसा हाईब्रिड–3, नरेन्द्र संकर–4, पन्त संकर लौकी–1, पन्त संकर लौकी–2, आजाद संकर लौकी–1

* लौकी के शुद्ध बीज बनाने के लिए फसल के लिंग के बारे में जानना तथा इसमें फूल खिलने तथा परागण की जानकारी होना आवश्यक है। लौकी में मोनोशियस लिंग प्रकार पाया जाता है। मोनोशियस एक पौधे में नर तथा मादा फूल अलग–अलग खिलते हैं। यह प्रकार अधिकतर वेलवाली सब्जियों में पाया जाता है।

फूल खिलने तथा परागण का उचित समय :

* लौकी के फूल खिलने व परागण का समय 12 बजे दोपहर से 3 बजे तक होता है।

बीज बनने हेतु आवश्यक जानकारी :

* लौकी मे पर–परागण होता है जिसमें मधुमक्खियाँ परागण करने में मदद करती है। शुद्ध बीज बनाने के लिये किसी एक सब्जी की एक किस्म की खेती बीज बनाने के लिए इस सब्जी की दूसरी किस्म से लगभग 500–800 मीटर की दूरी पर करें।

- प्रजनक तथा मूल बीजोत्पादन के लिए किसी भी सब्जी की एक किस्म से दूसरी किस्म के पौधों की बीज की दूरी 1200 मीटर या उससे ज्यादा होनी चाहिए। अगर ऐसा नहीं करते हैं तो किस्मों के बीच पर परागण हो सकता है और बीज में मिश्रण हो सकता हैं इसी प्रक्रिया को पृथकीकरण दूरी कहते हैं।
- जिस किस्म का बीज बनाना हो, उस किस्म के पूरे गुणों की जानकारी होना आवश्यक है ताकि फसल में अगर इस किस्म के अलावा कोई अन्य प्रकार के पौधे दिखाई दे तो उनको फल आने से पहले खेत से उखाड़कर फेंक देना चाहिए। इस विधि को रोगिंग कहते हैं। लौकी में फूल आने से पहले रोगिंग करते हैं जिससे कि कोई दूसरा पौधा खेत में न रह जाए।
- पर–परागण के समय कीटनाशी व फफूँदनाशी दवाओं का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि मधुमक्खियों द्वारा परागण फल बनने में मदद करती है। ऐसा न करने पर हानिकारक कीड़ों के साथ–साथ लाभदायक मधुमक्खियाँ भी मर जाती है जिससे परागण नहीं होगी। फल नहीं बनेगा तथा बीज उत्पादन पर बुरा असर पड़ेगा।
- लौकी में फूल दोपहर में खिलते हैं तो दवा के घोल का छिड़काव शाम 6–7 बजे अथवा सुबह 6 से 8 बजे तक कर सकते हैं।
- अच्छा बीज तैयार करने के लिए लौकी को पेड़ में पकने पर ही तुड़ाई करना चाहिए। लौकी का बीज बनाने के लिए बसंत गर्मी के मौसम में ही खेती करना चाहिए क्योंकि गर्मी में शुष्क मौसम के कारण बीज अच्छी प्रकार पकता है तथा अच्छी प्रकार सुख जाता हैं बरसात के मौसम में बहुत से कीड़े फसल को नुकसान पहुंचाते हैं और फसल ठीक प्रकार सूख भी नहीं पाता है।
- लौकी के फलों को तोड़कर के 15–20 दिन बाद बीज निकालें तो बीज गुण जमाव के दृष्टि से अच्छा होता है। बीज निकालने के उपरान्त तेज धूप में बीजों को तब तक सूखायें जब तक कि नमी 6 प्रतिशत न हो जाए, तत्पश्चात् इनका भंडारण करना चाहिए।

मैं तुम्हे एक नया आदेश देता हूँ: एक दूसरे से प्रेम करो। जैसे मैंने तुमसे प्रेम किया है, तुम एक दूसरे से प्रेम करो।

– जीसस क्राइस्ट

वायु श्वासी मछलियों का पालन

डा. मंगलानन्द झा

कृषि विज्ञान केन्द्र, चानपुरा, बसैठ, मधुबनी

ऐसी मछलियाँ जिसमें जल के अतिरिक्त वायु से भी ऑक्सीजन लेने की क्षमता होती है, वायु श्वासी मछलियाँ कहलाती हैं। इसके इसी गुण के कारण ही इन्हें बाजार में जिंदा बेचा जा सकता है। शरीर के लिए आवश्यक पौष्टिक तत्वों इन मछलियों में कार्प मछली की तुलना में अधिक होती है और यही कारण है कि दुर्बल (बीमार) व्यक्तियों को इन मछलियों का सेवन करने की सलाह डॉक्टर द्वारा दी जाती है। इसलिए बाजार में इसकी माँग तथा मूल्य अधिक है।

तालाब प्रबंध/तैयारी :– वायु श्वासी मछलियों को दलदली, उथला एवं जलीय पौधों से भरे तालाब में पाला जा सकता है, जहाँ दूसरी मछलियों का पालना लगभग असंभव है। इनके पालने के लिए 0.1–0.2 हेक्टर का तालाब जिसकी पानी की गहराई 2–3 फीट हो जिसमें मछली को पानी की सतह पर ऑक्सीजन लेने आने पर कम ऊर्जा की खपत हो विशेष उपयुक्त होती है। इनका पालन सामान्यतः अल्पकालीन होता है जिसमें तालाब प्रबंध के अनुसार ही वृद्धि होती है।

यदि संचय की दर अधिक हो तथा एक ही जल क्षेत्र से कई फसलें लेकर बहुत अधिक उत्पादन करना हो तो पानी को समय–समय पर बदलना चाहिए। वार्षिक तालाबों में पहले से उपस्थित मछलियों को मारना आवश्यक है जिसके लिए महुए की खल्ली 2500 कि0 ग्रा0 / हे0 प्रति मीटर जल क्षेत्र के लिये तालाब में डालनी चाहिए। महुए की खल्ली द्वारा उपचार करने के 15 दिनों के बाद तालाब की तली को एक रस्सी से बँधी हुई ईटों को खींचते हुए धूमा देनी चाहिए। अगर तालाब में सिल्ट गाद अधिक जमा हो गई हो तो तालाब में विषैलापन कम करने के लिये चूना का प्रयोग 300 कि0 ग्रा0/हे0 की मात्रा में करना चाहिए।

पालन एवं लाभ की दृष्टि से मांगुर सबसे अधिक उपयुक्त है। साधारणतः किसी एक जाति की मछली या मिश्रित जाति जैसे सिंधी एवं कवई, मांगुर, सिंधी एवं कवई का पालन किया जा सकता है। इन मछलियों का संचय दर 50,000 स्वस्थ अंगुलिकाएँ/हे0 है, रखने की सलाह दी जाती है। मांगुर मछली का संचय बहुजातीय मछली पालन तालाबों में भी कार्प मछली के साथ की जा सकती है। तलीय क्षेत्र में रहने के कारण वैसे तालाबों में इन्हें कामन कार्प की जगह दी जाती है और अन्य मछलियों के अलावा इनकी संचय दर 25,000 प्रति हैक्टर रखी जाती है। मखाना संवर्धन तालाबों में मांगुर, सिंधी कवई तथा गरई को मखाना के साथ संवर्धित किया जा सकता है।

सारणी 1– वायु श्वासी मछलियों में पाये जाने वाले पौष्टिक तत्व (प्रति 100 ग्रा0 मछली)

मछलियाँ	नमी (ग्रा.)	प्रोटीन (ग्रा.)	चर्बी (ग्रा.)	काबोहाइड्रेट (ग्रा.)	खनिज (ग्रा.)	लोहा (ग्रा.)	कैल्शियम (मि. ग्रा.)	फासफोरस (मि. ग्रा.)
सिंधी	68.00	22.80	0.60	6.90	1.60	2.30	670	650
मांगुर	68.20	15.00	1.80	4.20	1.50	0.70	210	290
कवई	70.00	14.80	8.80	4.40	2.20	1.40	410	390
सौरा	78.00	16.20	2.30	2.20	1.30	0.50	140	95
गड़ई	74.00	19.40	0.60	3.40	2.60	1.30	610	530
सौल	70.00	22.00	2.80	.....	2.10	2.90	180	250

मछलियों के भोजन एवं पूरक आहार :– वायुश्वासी मछलियाँ मूलतः कीड़े–मकोड़ों तथा सड़ी–गली चीजों को ही खाती हैं। दलदली क्षेत्रों में उपलब्ध मेढ़क के बच्चे छोटी मछलियाँ इत्यादि इनके प्रिय भोजन में है। अच्छी बढ़त एवं अधिक उत्पादन के लिए तालाब में प्राकृतिक भोजन प्रचुर मात्रा में होना चाहिए। इसके लिए छोटी जाति तिलपिया इत्यादि को पाला जा सकता है जो कि उनके लगातार भोजन का काम करेगी। इसके अलावा पूरक आहार के रूप में चावल की भूसी, सरसों की खल्ली तथा मछली के चूर्ण 2:1:1 के अनुपात या चावल की भूसी और मुर्गी के उपलब्ध भोजन को 3:1 के अनुपात में मिलाकर उपयोग किया जा सकता है। ये पूरक आहार प्रति दिन मछलियों के वजन का 5–10 प्रतिशत रखना चाहिए। इसके साथ–साथ 1:1:1 के अनुपात में खल्ली, चावल का कुन्डा तथा बायोगैस की स्लरी के मिश्रण को पूरे समय सस्ते आहार के रूप में प्रयोग की जा सकती है।

मछलियों के पूरक आहार छींट कर या टोकरी में देना अच्छा होता है इसके अलावा अगर आस–पास कृषि के खेत हो तो तालाब में एक बत्ती लगाकर कीड़ें–मकोड़ें को आकर्षित किया जा सकता है जो मछलियों के लिए अच्छा भोजन बनता है। पूरक आहार अगर दिन के बदले रात में दिया जाये तो उसका अच्छी तरह उपयोग होता है।

सारणी 2– वायु श्वासी मछलियों के पूरक आहार की मात्रा

पालन की अवधि	आहार की मात्रा (50,000 मछलियों के लिए)
1–2 माह	5–10 किलोग्राम/दिन
3–4 माह	10–20 किलोग्राम/दिन
5–6 माह	20–30 किलोग्राम/दिन
7–8 माह	30–40 किलोग्राम/दिन

वायुश्वासी मछलियों का उत्पादन एवं निष्कासनः– इन मछलियों की पालन अवधि लगभग 8 महीनों की होती है। उस समय तक ये 0.5 से 0.8 किलोग्राम तक हो जाती हैं और कुल उत्पादन 4000–5000 किलोग्राम प्रति हैक्टर होता है। जिससे शुद्धलाभ 1,50,000–1,80,000 रूपया प्रति हैक्टर होता है।

मछलियों को निष्कासन के लिए गर्मी का मौसम ही उपयुक्त होता है क्योंकि सभी मछलियों को निकालने के लिए तालाब को सुखाना आवश्यक है।

नोटः– थाई मांगुर जिसका जीव शास्त्रीय नाम क्लैरियस गाइरी पाइनस है जिसे अंग्रेजी में 'शार्पटुथ कैटफिश' या 'नाइट कैटफिश' के नाम से जानी जाती है का पालन न करें क्योंकि इसका पालन गैर अनुशंसित है।

भारत की गरीबी पूरी तरह से वर्तमान शासन की वजह से है।

– बाल गंगाधर तिलक

फौब्बारा सिंचाई विधि

अशोक कुमार

कृषि विज्ञान केन्द्र, मुंगेर

वैसी सिंचाई विधि जिसमें पानी तथा पानी में घुलनशील खाद, पोषक तत्व एवं पौधा संरक्षक दवाई पौधा के आवश्यकतानुसार या मिट्टी में पानी के अंतःस्वेदन दर के अनुसार उसके पर्णीय भाग पर कृत्रिम वारिस के रुप में छिड़का जाता है, फब्बारा सिंचाई विधि कहलाता है। इसमें पम्पिंग से प्रदत्त दाव की सहायता से ओरिफिस या महीन नोजल से पानी का वर्षा के समान छोटी–छोटी बूँद उत्पन्न किया जाता हैं इसमें पम्पिंग सेट के उचित चुनाव, उचित नोजल (छिद्र) का चुनाव तथा फौब्बारों की उचित जगह पर लगाकर सिंचाई जल एवं उसमें घुलनषील रासायनिक पदार्थ की उपयोग क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

इस सिंचाई का उपयोग भारत में पांचवी अर्द्ध दशक से हो रहा है। भारत में मुख्यतः हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा उत्तर प्रदेश में इस सिंचाई विधि का उपयोग किया जाता है। यह सिंचाई विधि पूर्वी भारत के चाय बगानों में ज्यादा उपयोग किया जाता है। भारत करीब सात लाख क्षेत्रफल में इस विधि से सिंचाई हो रहा है और करीब डेढ़ लाख से अधिक स्प्रिंक्लर सेट लगा है।

फौब्बारा सिंचाई जूट एवं धान फसल को छोड़कर सभी फसल में लगाया जाता हैं धान फसल में भी पौधा रक्षक सिंचाई के रुप में लेवा फब्बारा सिंचाई की जाती है। इस सिंचाई विधि का उपयोग बलुआही, उवड़ खावर जमीन में तथा पानी के अभाव वाले क्षेत्र में अत्यावश्यक है। लेकिन समतल जमीन में पानी, भूमि एवं पानी में घुलनशील रासायनिक की उपयोग क्षमता बढ़ाने, कृषि लागत कम करने एवं अधिक कृषि उत्पाद प्राप्त करने के लिए अत्यावश्यक है। लेकिन वैसे भूमि में इस सिंचाई विधि का उपयोग नहीं किया जाता है जो क्ले तथा जिसमें पानी की अन्तः स्वेदन दर 4 मिली मीटर प्रति घंटा से कम हो। इस सिंचाई विधि से निम्नलिखित लाभ है –

- जल की बचत सतही सिंचाई की तुलना में करीब 30–40 प्रतिशत की होती है। इसमें पानी की उपयोग क्षकता 65 से 75 प्रतिशत होती है। सतही सिचाई में जितने पानी से खेत की सिंचाई करते हैं इस विधि से उतना ही पानी से डेढ़ से दोगुना जमीन की सिंचाई की जा सकती है।
- भूमि की बचत तथा जमीन का सही उपयोग फसल उत्पादन के लिए इस सिंचाई विधि से अधिक तथा अच्छी है। इससे समस्याग्रस्त जमीन जैसे बलुआही, ऊँच–नीच जमीन में भी सिंचाई समान रुप से पूरे खेत में की जा सकती है जो सतही सिंचाई से संभव नहीं है तथा सतही सिंचाई में मिट्टी का कटाव भी होता है। इसमें नाली, क्यारी, जमीन की समतलीकरण तथा मेढ़ बनाने की जरुरत नहीं पड़ती है तथा जमीन कड़ी नहीं होती है। इस सिंचाई विधि से सिंचाई करने पर 18–20 प्रतिशत जमीन की बचत होती है जो नाली, क्यारी या मेड़ बनाने में बर्बाद हो जाता था।

- फसल के जड़ क्षेत्र में हमेशा पानी एवं पोषक तत्व मौजूद रहता है और उपर पर्णीय भाग ठंडा में कुहासा से रक्षित तथा गर्मी के दिनों में ठंडा रहता है जिससे कृषि उत्पाद अधिक तथा अच्छी गुणवत्ता वाला प्राप्त होती है। लीची में स्प्रिंक्लर सिंचाई करने पर फल का फटना 11 प्रतिशत से घटकर 4 प्रतिशत अनुसंधान में पाया गया है।
- खाद एवं पोषक तत्व की बचत इस सिंचाई विधि से होती है। करीब 15–25 प्रतिशत पानी में घुलनशील खाद की बचत के साथ–साथ 15 –20 प्रतिशत अधिक कृषि उत्पाद अन्य पारंपरिक सिंचाई विधि की तुलना में पाया गया है।
- मजदूर की बचत इस सिंचाई विधि से होता है। इस सिंचाई में नाली, क्यारी, मेड़ नहीं बनानी पड़ती है। पानी में घुलनशील खाद एवं अन्य रासायनिक स्वतः सिंचाई जल के साथ पौधा के पर्णीय भाग में छिड़क जाता है। हल्की सिंचाई के कारण रोग तथा कीट का प्रकोप कम होता है जिससे पौधा संरक्षक दवाई कम खर्च करना पड़ता है। इन सभी कार्यों में मजदूर की बचत होती है। इसमें करीब 25 – 45 प्रतिशत मजदूर की बचत अन्य सतही सिंचाई विधि की तुलना में होती है।
- बीज के अंकुरण के लिए आद्रता पूरे खेत में एक समान देता है जो अन्य सतही सिंचाई विधि में संभव नहीं है।
- मिट्टी के सुधार के लिए पानी में घुलनशील पदार्थ (चूना, अम्ल या रेजिन) का उपयोग इस सिंचाई विधि से कम खर्च में किया जा सकता है।
- इस सिंचाई विधि का उपयोग फसल को कुहासा तथा अत्यधिक गर्मी से बचाने के लिए किया जाता है।
- इसका उपयोग लकड़ी के क्योरिंग तथा सतह पर धूल बैठाने के लिए की जाती है।
- इस सिंचाई विधि से अग्नि का शमन किया जाता है।
- इसका उपयोग बिचड़ा उगाने, वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने, मशरुम उत्पादन में आर्द्रता बढ़ाने तथा पॉली हाउस एवं षेडनेट हाउस को ठंडाने या आर्द्रता बढ़ाने में किया जाता है।

साधारणतः फौब्बारा सिंचाई दो प्रकार का होता है –

1. **घूमता हुआ फौब्बारा सिंचाई –** इसमें छोटा छिद्र वाला नोजल या ओरिफिस पार्श्व पाइप से जुड़ा राजइर पाइप के उपर फिक्स रहता है जो पानी के दवाब से 900 पर घूमता है। छोटा स्प्रिंक्लर में पहले से निर्धारित किसी कोण 1200, 1800, 3600 पर भी घुमकर विभिन्न आकार की जमीन पट्टी की सिंचाई कर सकता है। पानी के दबाव से एक पंखी से एक छोआ हथौड़ी टकराता है और स्प्रिंक्लर को घुमाता है।
2. **पाइप में छिद्रवाला फब्बारा सिंचाई विधि –** सिंचाई वाला पाइप में छेद करने से फौब्बारा सिंचाई होता

है जो कम दाव (एक किलोग्राम प्रति वर्ग सेंटीमीटर) पर 1.25 से 5 सेंटीमीटर प्रति घंटा पानी देता है और 3 मीटर की पट्टी की सिंचाई करता है।

फौब्बारा सिंचाई एक जगह से दूसरे जगह पर ले जाने के आधार पर वर्गीकरण

1. एक जगह से दूसरी जगह ले जाने वाला भी फौब्बारा सिंचाई होता है। इस तरह की सिंचाई संयंत्र बाजार में विभिन्न कम्पनियों के नाम पर उपलब्ध है जिसमें पम्पिंग सेट, अधिक घनत्व वाला पाइप, राइजर पाइप, पाइप जोड़ने वाला कम्पलर, स्प्रिंक्लर तथा अन्य अवयव रहता है। इसे एक जगह से दूसरे जगह कम समय में खोलकर ले जा सकते हैं और कम समय में दूसरे जगह लगा सकते हैं।
2. इसमें पानी का स्रोत तथा पम्पिंग सेट एक जगह पर स्थिर रहता है और बांकी भाग को एक जगह से दूसरे जगह ले जाया जा सकता है।
3. इस तरह के स्प्रिंक्लर सेट में पानी का स्रोत, पम्पिंग सेट खाद डालने वाला सयंत्र एवं डिसिल्टशन बेसिन, मुख्य पाइप एक जगह फिक्स या लगा रहता है इसमें सिर्फ पार्श्व पाइप, राइजर पाइप एवं स्प्रिंक्लर एक जगह से दूसरे जगह ले जाया जा सकता है।
4. इसमें फसल के मौसम के अनुसार एक सीजन तक खेत में रहता है और फसल नहीं रहने पर फौब्बारा सेट को खोलकर रख देते हैं
5. इस तरह के पम्पिंग सेट में सभी अवयव हमेशा खेत में ही फिक्स या लगा रहता है।

स्प्रिंक्लर सिंचाई के अवयव

- पानी का स्रेत – पानी के स्रोत के रुप में टयूब वेल, कुआं, नदी का पानी, झील का पानी, नहर का पानी आदि का फौब्बारा सिंचाई के लिए उपयोग की जाती है।
- पम्पिंग सेट – विभिन्न तरह के स्प्रिंक्लर चलाने के लिए तथा पानी को नीचे के तल से उपर उठाने के लिए पम्प की आवश्यकता होती है जो पौधा के प्रकार, पानी के स्तर, स्प्रिंक्लर के प्रकार तथा उसको प्रवाह के आधार पर पम्प का चुनाव घूर्णी पम्प, टरबाइन पम्प, सवमर्शिवुल पम्प या मली स्टेज घूर्णी पम्प के रुप में तथा उसकी चलाने के लिए ईंजन तथा मोटर का चुनाव करते हैं। साधारणतः 5–8 हौर्स पावर का ईंजन तथा हल्की वजन का अधिक घूर्णी वाला पांच हार्स पावर वाला पोर्टेवल टाइप के इंजन से भी स्प्रिंक्लर सेट को चलाया जा सकता है जिसमें पांच नोजल (स्प्रीक्लर) तथा ढ़ाई ईंच का पांच सौ फीट का अधिक घनत्व वाला पाइप होती है।
- इसमें आवश्यकतानुसार 1.5'', 2'' या 2.5'' का मुख्य एवं पार्श्व पाइप अधिक घनत्व वाला एवं प्रेसर रेटिंग वाला पाइप है का चुनाव फौब्बारा सिंचाई के लिए किया जाता है।
- दो पाइप को जोड़ने वाला कम्पलर तथा स्प्रिंक्लर सेट को उपर उठाने के लिए राइजर पाइप होता है जो अधिक घनत्व वाला पॉलीथीन का होता है जिसकी साइज ½'' ls 3/4'' तक होती है।

स्प्रिंक्लर – साधारणतः खेत में उपयोग होने वाला मध्यम प्रकार के स्प्रिंक्लर जो 8–15 मीटर गोला में सिंचाई करता है जिसे चलाने के दाव 1.5 से 2.25 किलो प्रति सेंटीमीटर की जरुरत पड़ती है। मध्यम आकार के स्प्रिंक्लर के लिए 16–40 मीटर हेड की जरुरत पड़ती है। विशेष तरह के स्प्रिंक्लर के लिए जो 20–80 मीटर की दूरी तक सिंचाई करता है 2.5–12.5 किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर दबाव पर कार्य करता है, अधिक दाब वाली रेन गन कहलाता है। जिसका स्प्रे नॉजल जरुरत के मुताबिक बदल–बदल कर लगा सकते हैं जो विभिन्न कोणों पर सिंचाई करता है। इसके अलावा विभिन्न अवयव वाटर मीटर, कम्पलर, बेंड, टी0, सील, फ्लैप पिन, फर्टिलाइजर टैंक, भेन्चूरी एसम्बली तथा डिसिल्टेशन बेसिन आदि रहता है। स्प्रिंक्लर सेट जो पोर्टेवुल तरह का होता है जिसमें 2.5'' व्यास का अधिक घनत्व वाला पाइप तथा उसे जोड़नेवाला अवयव, राइज पाइप एवं पांच नॉजल (मीडीयम तरह) का दाम करीब 15, 000 – 25000 रुपये एक सेट का आता है जिसमें 50 प्रतिशत करीब 7500 रुपये प्रति स्प्रिंक्लर सेट की दर से सरकार अनुदान देती है।

स्प्रिंक्लर सेट, नॉजल, राइजर पाइप मुख्य एवं पार्श्व पाइप की स्थापना खर्च करीब एक हेक्टेयर के लिए 15000, दो हेक्टेयर के लिए 25000 रुपया तथा चार हेक्टेयर के लिए 35000 रुपया लगता है।

पाइप पर पाइप की साइज व्यास (मि0मी0) लम्बाई (मोटर) दाब रेटिंग, (किलाग्रा/मीटर^2) ISO चिन्ह तथा कम्पनी का नाम अवश्य देखना चाहिए।

स्प्रिंक्लर पर नोजल आकार (मि0मी0) आपरेटिंग दाब (किलोग्राम/मीटर^2) प्रवाह दर (मि0मी0 प्रति घंटा) तथा पानी विस्तार क्षेत्र व्यास (मीटर में) देखना चाहिए। जब स्प्रिंक्लर का उपयोग नहीं हो तब सभी अवयव खोल सुरक्षित स्थान पर रख दें। पाइप को खाद या चूहा काटने वाला जगह पर न रखें। स्प्रिंक्लर सेट के स्पिरिंग को दवा कर उसकी फैलनेवाली प्रक्रिया को हरेक मौसम में बनाए रखें। स्प्रिंक्लर में किसी तरह का ग्रीज एवं मोबील न लगायें क्योंकि वह पानी से लूकिरीकेटेड रहता है।

स्प्रिंक्लर सेट में मुख्य समस्या स्प्रिंक्लर नहीं घूमने की रहती है। इसका मुख्य कारण कम दबाव, ढीला स्पिरिंग तथा कटा वासर हो सकता है। दबाव बढ़ा कर, स्पिरिंग खींचकर तथा वासर को बदल कर ठीक किया जा सकता है।

जब आप सपने देखना छोड़ देते हैं आप जीना छोड़ देते हैं।

– माल्कम फ़ोर्ब्स

फौब्बारा सिंचाई का लाभ विभिन्न फसलों में इस प्रकार पाया गया है –

फसल	पानी का बचत (%)	उत्पादन में वृद्धि (%)
बाजरा	56	19
जई	56	16
भिन्डी	28	23
गाँठ गोभी	40	3
फूलगोभी	35	12
मिरचाई	33	24
कॉटन	36	50
लोबिया	19	3
सौंप	29	35
हल्दी	28	6
चना	69	57
मूंगफली	20	40
ज्वार	55	34
लहसुन	16	27
मकई	41	36
प्याज	33	23
आलू	46	4
गेंहूँ	35	24
सूर्यमुखी	33	20

इस प्रकार स्प्रिंक्लर सेट का उपयोग गेंहूँ, चना, राई, मसूर, मटर या अन्य घना फसलों में कर कम लागत में अधिक गुणवत्ता वाला अधिक कृषि उत्पाद प्राप्त कर सकते हैं तथा स्प्रिंक्लर सेट का दाम केवल दो साल में बढ़ी उत्पाद तथा घटी कृषि लागत से पूरा कर सकते हैं।

एक सच्चा आदमी किसी से नफरत नहीं करता।

– नेपोलियन बोनापार्ट

मशरूम की खेती

डा. संजीव कुमार

कृषि विज्ञान केंद्र, हरनौत, नालंदा

नालंदा जिला में मशरूम की खेती करीब 2000 ई0 में कुछ प्रगतिशील कृशको के द्वारा बिंद प्रखंड के विभिन्न गाँवों (यथा मोहदीपुर, बिंद, इब्राहिमपुर, रामपुर, रसुलपुर,) के अस्थावॉ प्रखंड के दायमचक, एवं जाना और परवलपुर, के इत्यादि गौरवनगर ग्राम मे इसकी शुरूआत की गई, जिससे उत्साहित होकर मशरूम से संबंधित विषय में प्रशिक्षण की मांग कृ0 वि0 के0, द्वारा की जाने लगी। तदुपरान्त कृषि विज्ञान केंद्र, हरनौत द्वारा मशरूम उत्पादन पर नियमित प्रशिक्षण का आयोजन करने लगी, जिससे कि किसानों के बीच खासकर महिलाओं की मशरूम उत्पादन के प्रति जागरूकता बढ़ी एवं बड़ी संख्या मे महिलाओं एवं पुरूष किसानो ने इसे अपना लिया। इसी दौरान वर्ष 2007 मे कृषि विज्ञान केंद्र, हरनौत द्वारा राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय मे ''मशरूम उत्पादन एवं स्पॉन उत्पादन'' विषय पर विशेष प्रशिक्षण के लिये चयनित कृषकों को भेजा गया, जिसके बाद आत्मा नालंदा के सहयोग से कुछ अन्य मशरूम उत्पादकों को प्रशिक्षण हेतु मशरूम अनुसंधान केंद्र, सोलन (हिमाचल प्रदेश), सोनीपत, एवं पंतनगर में भी भेजा गया। इसके बाद कुछ किसान जैसे, श्रीमति अनीता, चंडी एवं श्रीमति मधु पटेल, राजगीर, श्री संजीव कुमार, बिंद, ने कृषि विज्ञान केंद्र, हरनौत के तकनीकी सहयोग जिला प्रशासन के वितीय सहयोग से वर्ष 2012 मे मशरूम स्पॉन लैब की स्थापना की गई। जिसमे मशरूम उत्पादको हेतु मशरूम स्पॉन आसानी से उपलब्ध होने लगा। जिसके कारण एकाएक मशरूम उत्पादन मे अत्यधिक वृद्धि हुई, तब उत्पादको के समक्ष बाजार की समस्या उत्पन्न हो गई, जिससे निपटने के लिये कृषि विज्ञान केंद्र, हरनौत के सुझाव पर तत्कालीन जिलाधिकारी नालन्दा ने मशरूम को जिले के अंदर करीब 200–250 विद्यालयों मे मध्याहन् भोजन (मिड डे मील) मे शामिल करने का निदेश दिया। जिससे उत्पादको को मशरूम विपणन की समस्या काफी आसान हुई तथा उत्पादको को सही मुल्य मिलने लगा।

वर्ष 2009–2010 के बाद, जिले के अंदर मशरूम उत्पादकों को स्वयं सहायता समुह से जोड़ा गया। वर्तमान में यह संख्या 272 स्वयं सहायता समुह तक पहूँच गया हैं । इसी दौरान कृषि विज्ञान केंद्र, आत्मा नालंदा द्वारा अग्रिम पंक्ति प्रत्यक्षण से हजारो स्वयं सहायता समुहो को अधिकाधिक मशरूम स्पॉन उपलब्ध कराया गया। जिससे की मशरूम उत्पादन ग्रामों तक पहूंच गया हैं, फिर समुह की महिलाओं को कृ0 वि0 के0, हरनौत एवं जिला प्रशासन के सहयोग से मशरूम उत्पादन की बुद्ध सर्किट यानी नालंदा, बोध गया, राजगीर के पर्यटक स्थल के विभिन्न एजेंसी एवं लोकल मार्केट इत्यादि के माध्यम से मशरूम विपणन की समस्या का समाधान कराया गया। इससे यहॉ की महिलायें आर्थिक रूप से सशक्त हो रही है। इनमे से कुछ महिलायें तकनीकी रूप से इतनी सक्षम हो चुकी है कि विभिन्न स्तर पर प्रशिक्षणों मे मास्टर ट्रेनर की भुमिका निभा रही है। इसके अतिरिक्त कृषि विज्ञान केंद्र, हरनौत 2012 से मशरूम प्रसंस्करण पर नियमित प्रशिक्षण का आयोजन कर रहा है। जिससे लाभन्वित होकर जिले की महिलायें मशरूम के विभिन्न उत्पादों, आचार, पकौड़ा, बड़ी इत्यादि का विपणन करके भी आर्थिक रूप से सशक्त हो रही है।

वर्तमान मे जिले के अंदर करीब 250 से भी अधिक गॉव मशरूम उत्पादन मे लगा हुआ है जिसमे सारिलचक, सुरजपुर, बड़गांव, नीरपुर, राजगीर, पंडितपुर, जॉना, जाहॉना, मोहदीपुर, बिंद, षोराडीह, बराह, अंनतपुर, माधोपुर, राजनबिगहा, प्राणचक, ताजनीपुर, नौरंगा, मिर्जापुर, गौरवनगर, यशवंतपुर इत्यादि प्रमुख है।

ग्रामीण विकास का उत्तम साधनः उन्नत डेयरी

डा. संजीव कुमार

कृषि विज्ञान केंद्र, हरनौत, नालंदा

खेती के साथ किये जाने वाले कार्यों में डेरी फार्मिंग एक सबसे उत्तम, सुविधाजनक, सुरक्षित व सुनहरे भविष्य की ओर ले जाने वाला कार्य है बशर्ते कि इसको उन्नत तरीके से उपयुक्त तकनीकों व सुचारू पशु प्रबंधन के साथ किया जाये।

कुछ लोग मानते हैं कि पशु आहार व पशुओं की कीमतें महँगी है और मजदूरी भी बहुत महँगी होने से पशु पालन का कार्य लाभदायक नहीं है यह सिर्फ एक नकारात्मक सोच है। अगर उन्नत नस्ल के अच्छी दूध क्षमता के पशु रखे जाएं और उन्हें उपर्युक्त संतुलित आहार देने में अपने ही खेत में पैदा होनी वाली फसलों का बचा हुआ हिस्सा इस्तेमाल करके संतुलित आहार खिलाया जाये एवं साथ–साथ में पूर्णतया मजदूरी पर आधारित न रह कर स्वयं भी इस कार्य में अपनी व अपने परिवार के सदस्यों की सहभागिता बढ़ाई जाये तो इससे न सिर्फ प्रबन्धन अच्छा होगा बल्कि इसी कार्य में स्वावलम्बी बनना बहुत आसान होगा।

सफल डेरी के मुख्य मापदंड

नस्ल– भैंसों में मुर्राह, नीलीरावी, मेहसाना, अच्छी नस्लें हैं लेकिन पशु की अपनी नस्ल गुणवत्ता यानि दूध देने की क्षमता 12 ली. प्रतिदिन से कम नहीं होनी चाहिए और प्रति ब्यांत कम से कम 2000 ली. दूध होना चाहिए।

गायों में साहीवाल, एच. एफ. संकर, ब्राउनस्विस संकर या जर्सी संकर अच्छी नस्लें है। इनका प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन साहीवाल में से कम से कम 10–12 ली. एवं संकर नस्लों में 15–20 ली. क्षमता होनी चाहिए। इससे कम क्षमता होने पर दूध पैदा करने की लागत बढ़ेगी और डेरी से समुचित लाभ नहीं मिल पायेगा।

नस्ल सुधार कार्यक्रम– अपने पशु प्रबंधन के अनुभव के अनुसार किसान को चाहिए कि वह अपने पशुओं से ही उनकी संख्या बढ़ाये और उनकी नस्ल को लगातार उन्नत करते रहें। इसके लिए पशु प्रजनन प्रबन्ध समुचित हो और प्रजनन में प्रयुक्त किये जाने वाले सांड की अगली नस्ल में दूध बढ़ाने की क्षमता 25–30 प्रतिशत ज्यादा हो। इसके लिए उच्चतम सांड का चयन करके इस्तेमाल करना बेहद जरूरी है।

पशुओं का ब्यांत अंतराल 12–14 महीने से ज्यादा नहीं होना चाहिए। इसके बढ़ने से ड्राई पीरियड बढ़ता है जो कि डेरी से होने वाले लाभ को दीमक की तरह चट कर जाता है।

सूखा समय (ड्राई पीरियड सामान्यत) : 60–75 दिन से ज्यादा नहीं होना चाहिए। इसे नियंत्रित

करने के जरूरी है कि पशु ब्यांत के बाद औसतन 100 दिन के अन्दर दोबारा गभिन हो जाये। इसे सर्विस पीरियड कहा जाता है। दरअसल ड्राई पीरियड को नियंत्रित करने का मुख्य आधार सर्विस पीरियड हैं इसके लिए निम्न बातों का ध्यान रखना जरूरी है।

1. गाय या भैंस ब्याँने के बाद 2 महीने के अन्दर गर्मी में आ जानी चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि पशु को संतुलित आहार दिया जाये। जिसमें कि खनिज मिश्रण का उपयुक्त मात्रा में उपलब्ध होना बहुत जरूरी है। यह खनिज मिश्रण पशु की दूध उत्पादकता भी बढ़ाते है और उसे सही समय से गर्मी में आने के लिए भी सहायक होते है।

2. पशु की मदकाल अवस्था का विशेष ध्यान रखा जाए। गर्मी के लक्षणों की जांच करते रहना चाहिए।

3. छो या ढ़ाई महीने के अन्दर अगर पाशु गर्मी में आना शुरू नहीं हुआ तो उसकी लम्बे समय तक अनावश्यक इन्तजार करने की बजाय उसे समय रहते नजदीक के पशु चिकित्सक से जाँच कराकर उपयुक्त इलाज करायें।

4. कोई भी गाय या भैंस अगर तीन मदकाल में गर्भादान कराने के बावजूद भी गर्भित होने में असफल रहती है उसे रिपीट ब्रीडर कहा जाता है जिसके मुख्य कारण निम्नलिखित हो सकते है।

    a) पशु के प्रजनन अंगो (मुक्ष्यतः गर्भाशय) में संक्रमण होना।

    b) पशु की ओवरी से अंडे का विकास समुचित न होना या इसका सही समय पर अंडा न निकलना।

    c) गर्भाधान का समय व तरीका समुचित न होनाः देशी नस्लों को पशुओं में प्रायः 24–36 घंटे का मदकाल होता है अतः इन्हें गर्मी में महसूस करने के बाद उसी समय व अगले दिन या 12 घंटे के अन्तराल पर दोबारा गर्भाधान कराना चाहिए। संकर पशुओं में यह मदकाल प्रायः 48–72 घंटे तक होता है क्योंकि अंडोत्सर्ग का समय मदकाल समाप्त होने से करीब 6–8 घंटे पहले का होता है इसलिए इन पशुओं का गर्भाधान का उपयुक्त समय दूसरा व तीसरा दिन होता है ताकि डिम्ब उत्सर्जन व गर्भाधान के समय आपस में मैच कर सकें।

    d) सांड या प्रयोग किये जाने वाले वीर्य का गुणवत्ता में सही होनाः कोई भी गाय ये भैंस अगर तीन मदकाल में गर्भाधान के बावजूद भी गर्भित होने में असफल होती है तो उसे बार–बार गर्भाधान नहीं करना चाहिए इससे उसमें बीमारी या समस्या और ज्यादा बढ़ती जायेगी अतः उसकी योग्य पशुचिकित्सक से जाँच कराकर, उपयुक्त इलाज करायें और इस प्रक्रिया के बाद ही उसमें गर्भाधान करायें।

    e) संतुलित आहार : संतुलित आहार से अभिप्राय उस आहार से है जिसमें हम पशु की आवश्यकता के अनुरूप उसके आहार में सभी तत्वों को उचित मात्रा (न कम और न ज्यादा)

उपलब्ध कराते हैं इसके लिए पशु का मैनटिनेस व उसकी उत्पादकता (यानि दुग्ध उत्पादन की मात्रा) के अनुसार ही उसके आहार की मात्रा सुनिश्चित की जाती है। इसके लिए सभी तत्वों जैसे प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, खनिज लवण, विटामिन्स का सही अनुपात में होना अति आवश्यक है। प्रायः किसान भाई एक ही तत्व की अधिकता कर देते है और बाकी तत्वों की कमी बनी रहती हैं यह राशन महँगा भी पड़ता है और दूध उत्पादकता के संदर्भ में परिणाम भी संतोषजनक नहीं आ पाते।

प्रोटीन व कुल पाच्य तत्वों की मात्रा को संतुलित करने के लिए दाना मिश्रण बनाना आवश्यक है। क्योंकि एक आहार से दानों प्रोटीन व कुल पाच्य तत्व को अवाश्कतानुसार देना मुश्किल व काफी महँगा पड़ जाता है। आहार तैयार करते समय इस बात पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है कि यह महँगा न हो और सभी तत्वों की पूर्ति करें। इसके लिए हमें अपने पास का सामान या बाजार में उपलब्ध सामग्री को ध्यान में रखना होता है।

सामान्यतः 14–16 प्रतिशत प्रोटीन तथा कम से कम 65–68 प्रतिशत कुल पाच्य तत्व वाले मिश्रण जिसको निम्नलिखित तरीके से बनाया जा सकता है। हमारे दुधारू पशुओं के लिए सभी तत्वों की पूर्ति करता है।

1. खली – 25–35%
2. मोटे अनाज/अनाज – 25–35% (मोटी पिसाई वाला)
3. कृषि आधारित उत्पोपादन (चोकर, चुन्नी, इत्यादि) – 10–30%
4. शीरा – 10%
5. खनिज लवण – 2%
6. नमक – 1%

प्रति प्रशु संतुलित आहार की मात्रा – औसतन 400 कि. ग्रा. वजन वाली गाय जो 15 किलो दूध प्रतिदिन देती है। उसकी जरूरत को हम इस तरह से जान सकते है कि :

1. शरीर निर्वाह के लिए हरे चारे के साथ 1 किलो सूखा चारे के साथ 2 किलो दाना।
2. दूध उत्पादन हेतु प्रति ढ़ाई किलो दूध के लिए 1 किलो पशु आहार यानि 15 किलो दूध के लिए 6 किलो दाना।

कुल मात्रा : हरे चारे के समय 7 किलो, सूखे चारे के समय 8 किलो दाना।

यह आहार पशु को दिन में दो बार आधी–आधी मात्रा में खिलाया जाना चाहिए। दूध दोहन के समय फीड खिलाना प्रबंन्धन हेतु ज्यादा उपयुक्त होता है। जिन पशुओं का दूध दिन में तीन बार निकालते हैं तव यह दाना तिहाई–तिहाई करके तीन बार खिलाया जान चाहिए। इसकी उचित पाच्यता के लिए जरूरी है कि 2–3 घंटे पहले दाने को साफ व स्वच्छ पानी में भिगो दिया जाये।

नवजात पशुः नवजात बछड़े कटड़े यानि बच्चों को जन्म से पहले 6 महीने तक विशेष देखभाल की जरूयत होती है इसके लिए निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

1. कृमि रहित करना

   क. पहले हफते के अन्दर
   ख. एक महीने बाद
   ग. 2 – 3 महीने बाद
   घ. 6 महीने बाद

   अधिक जानकारी के लिए नजदीक के पशु चिकित्सक से परामर्श करें।

2. टीकाकरण : बड़े पशुओं की तरह

3. खुराक : पहले तीन महीने – स्वच्छ दूध शरीर के वजन का 10 प्रतिशत – दो या तीन हिस्सों मे बाँटकर

   यानि 40 किलो वजन पर 4 किलो (सुबह शाम 2–2 किलो)

तीन महीने बाद चूँकि पहला पेट अर्थात् रूमन विकसित हो जाता है। इस उम्र पर चोकर, हरा चारा आदि शुरू करते हुए दूध की मात्रा धीरे–धीरे घटाई जा सकती है।

पशुओं की स्वास्थ्य रक्षा– अच्छे प्रबन्धन के चलते पशुओं में ज्यादा बीमारियाँ नही होती। इसके लिए आवश्यक है कि पशुओं में निम्न बीमारियों का टीकाकरण करायें:

क. गल घोटूं – प्रतिवर्ष, मई–जून में
ख. खुरपका व मुँह पका – हर 6 महीने बाद
ग. संकरनस्ल की गायों में – उपरोक्त के अलावा थैलियोसिस का टीकाकरण – 2 वर्ष में एक बार अवश्य कराया जाना चाहिए।

थनैला रोग से बचाव – वैसे तो दुधारू पशुओं में थनैला रोग एक सामान्य व अति नुकसानदायक बीमारी है लिकिन अगर उचित प्रबन्धन हो और पशुपालक इससे बचाव के लिए पूर्णतया जागरूक हो तो इस बीमारी पर आसानी से नियंत्रण किया जा सकता है। थनैला रोग से बचाव के लिए मुख्य बातें:

i. पशुओं की आवास स्थल साफ व सूखा हो।

ii. स्ट्रिन कप का इस्तेमाल करें।

iii. दूध दोहन के बाद थनों की कीटाणुशक घोल में डुबोकर साफ कपड़े से सुखायें।

iv. दूध–दोहन के बाद आधा घंटे तक पशु को बैठने न दिया जाये क्योकिं आधा घंटे तक थन का छेद खुला रहता है और इसमें जीवाणुओं के प्रवेश की सम्भावना अत्यधिक रहती है।

v. हर सप्ताह या 15 दिन के अन्तराल पर सी. एम. टी. टैस्ट करायें, इससे बीमारी के आने से पहले ही इसकी सम्भावना का पता चल जाता है और ऐसी अवस्था में इलाज करना काफी आसान होता है।

थनों में किसी प्रकार की सूजन या दूध के रंग व मात्रा में परिवर्तन, थनों में दर्द व गर्माइश आदि होने पर बिना किसी भी तरह की देरी किये योग्य पशु चिकित्सक से जाँच कराकर तुरन्त इलाज करायें और पहले 3–4 दिन का दवाई का कोर्स पूर्ण मात्रा के साथ किया जाना चाहिए। इसमें सुबह शाम पशु को टीके लगाये जाते है। दवाई की खुराक पशु के वजनानुसार निर्धारित की जानी चाहिए। कम मात्रा में दवाई देना या लम्बे अन्तराल पर देने से अपेक्षित परिणाम नहीं मिलते और बाद में अयन की अवस्था खराब होने पर इस बीमारी से निजात पाना असम्भव हो जाता है।

जो व्यक्ति भी विकास के लिए खड़ा है उसे हर एक रूढ़िवादी चीज की आलोचना करनी होगी, उसमे अविश्वास करना होगा तथा उसे चुनौती देनी होगी।

– भगत सिंह

अनानास एक रसीला फल

हेमन्त कुमार सिंह, नीरज प्रकाश एवं के. एम. सिंह

कृषि विज्ञान केन्द्र, किशनगंज

अनानास भारतवर्ष का महत्वपूर्ण एवं रसीला फल है हलांकि तकनीकी दृष्टि से देखें, तो ये अनेक फलों का समूह विलय होकर निकलता है। अनानास को ताजा काट कर भी खाया जाता है, और शीरे में संरक्षित कर या रस निकाल कर भी सेवन किया जाता है। इसे मीठे सलाद के रूप में एवं फ्रूट–कॉकटेल में मांसाहार के विकल्प के रूप में प्रयोग किया जाता है। मिष्ठान रूप में ये उच्च स्तर के अम्लीय स्वभाव का होता है।

औषधीय गुण

अनानास शरीर के भीतरी विषों को बाहर निकालता है। इसमें क्लोरीन की भरपूर मात्रा होती है। साथ ही पित विकारों में विशेष रूप से और पीलिया यानि पांडु में लाभकारी है। ये गले एवं मूत्र के रोगों में लाभदायक है। अनानास में प्रचुर मात्रा में मैग्नीशियम पाया जाता है। यह शरीर की हडिड्यों को मजबूत बनाने और शरीर को ऊर्जा प्रदान करने का काम करता है। एक प्याला अनानास के रस–सेवन से दिन भर के लिए आवश्यक मैग्नीशियम के 85 प्रतिशत की पूर्ति होती है। साथ ही ये कई रोगों में उपयोगी होता है। इस फल में पाया जाने वाले ब्रोमिलेन सर्दी और खांसी, सूजन, गले में खराश और गठिया में लाभदायक होता है। यह पाचन में भी उपयोगी होता है। अनानास अपने गुणों के कारण नेत्र–ज्योति के लिए भी उपयोगी होता है। ये उच्च एंटीआक्सीडेंट का श्रोत है व इसमें विटामिन सी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इस से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है और साधारण ठंड से भी सुरक्षा मिलती है। इससे सर्दी समेत कई अन्य संक्रमण का खतरा कम हो जाता है।

उन्नत प्रभेद

प्रभेद	अभियुक्ति
जायंट क्यू	बड़ा फल (1.5 से 2.5 कि. ग्रा) पीला रंग, रसेदार, रेशा मुक्त, पत्तियों के शीरे पर काँटे
जायंट क्वीन	छोटा फल (800 से 950 ग्राम) अत्याधिक पिला, कम रस वाला स्वादिष्ट पत्तियाँ पुरी काटेदार

अन्य प्रभेद : जल धूप, लाखट, मारीशस और चारलोट रोचाइल्ड

भूमि का चुनाव एवं खेत की तैयारी :

बलुआ दोमट मिट्टी जिसका पी0एच0 4.5 से 6.5 तक होना चाहिए। भूमि को जुताई एवं खुदाई के उपरान्त समतल कर रोपणी की तैयारी कर सकते है। सफल खेती के लिए अधिकतम तापमान 22 डिग्री सेंटीग्रेट से 32 डिग्री सेंटीग्रेट है। खेत की जुताई 15 से 30 सेमी0 की गहराई तक अच्छी होती है।

प्रवर्धन

1. **सकर्स :** अनानास के पौधों के पत्तियों के नीचले भाग से एक नन्हा पौधा निकलता है जिसे सकर्स कहते है। जिसका बजन 500 से 1000 ग्राम होता है।

2. **स्लिप :** नन्हें पौधे जो अनानास फल के डंठल के आधार के पास से प्रष्फुटित होता है उसे स्लिप कहा जाता है जिसका वनज 350 – 500 ग्राम होता है।

3. **क्राउन :** फल के उपर का शीर्ष जो पत्तियों को धारण किया रहता है उसे क्राउन कहते हैं जिसका बजन 200–400 ग्राम तक होता है।

रोपण विधि :

चार प्रकार के रोपण विधि होते है।

1. फलैट विस्तार 2. कुंड 3. समोच्च 4. खाई

रोपण समय :– अक्टुबर – नवम्बर एवं जून–जुलाई में रोपणा आदर्श माना जाता है। फूल निकलने की अवधि जनवरी से मार्च तक है।

रोपनी हेतु पौधे (नर्सरी) की आवश्यकता प्रति हेक्टेयर)

क्र.सं	विधि	रोपाई की दुरी (से.मी.)	पौधों की संख्या/हे0
1	सामान्य	40X60X90	37037
2	सघन	25X30X50	133333
3	अत्यधीक उपज हेतु	25X60X90	53300

रोपण सामग्री का उपचार :– रोपण सामग्री को सेरेशन घोल में 4 ग्राम 1 लीटर पानी में या 0.2 प्रतिशत डाइथैन एम. 45 रोपण सामग्री में लगाना चाहिए जिससे बड रोट का प्रकोप नहीं होती है।

उच्च घनत्व रोपण :– अस कवकध सं 70– 105 टन प्रति हेक्टेयर की उपज होती है एवं खेत में कम खरपतवार तथा सूर्य की किरण से फलों का संरक्षण होता है। इस इकाई क्षेत्र में प्रवर्धक सामग्री यथा सकर/ स्लीप में वृद्धि होती है।

खाद एवं उर्वरक :

N:P:K – 12:4:12 ग्राम प्रति पौधा प्रति वर्ष नाइट्रोजन का 6 विभाजित खुराकों में देना चाहिए। दो–दो महिने के रोपण के अन्तराल में लगातार 12 महीने तक करना चाहिए।

सिंचाई :– अनानास की खेती वर्षा आधारित क्षेत्रों में की जाती है। अल्प वर्षा और गर्म मौसम भाग में सिंचाई 20–25 दिनों में देना अनुशंसित है।

निकाई एवं गुड़ाई :

निकाई एक वर्ष में कम से कम तीन से चार बार किया जाता है। खरपतवार के लिए खरपतवारनाशक का उपयोग कर सकते है। जैसे – डाइयूरोन 2 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तथा ब्रोमेसील और डाइयूरोन का मिश्रण 2 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर का उपयोग अनुशंसनीय है। फल लगने से पहले आधा तथा 5 महीने बाद आधा खरपतवारनाशक उपयोग किया जा सकता है।

पलवार (मल्चिंग) :

इससे खेत में नमी एवं खरपतवार नियंत्रण होता है। जिसमें सूखी पतियाँ, पुआल तथा पॉलथीन का उपयोग किया जाता हैं।

वृद्धि नियामक (हार्मोंस)

उपयोग समय	संद्रता
सितम्बर से जुन जल्दी फूल आने के लिए	एन. एन. ए. कम्पाउंड प्लेनोफिक्स और सेलीमोन 10–12 पी.पी.एम। (प्लेनोफिक्स 1 एम. एल/ 4.5 लीटर पानी)
मार्च – मई फूल आने के लिए	एथल 10 पी.पी.एम (2.5 एम.एल/100 लीटर एवं पानी और 2 प्रतिशत यूरिया और 0.04 प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट।

अनानास के प्रमुख कीट एवं रोग तथा प्रबंधन :

दहिया कीट :– कीट लालीमा लिए हुए उजले दही की तरह आकृति में बाहर से दिखाई पड़ते है। ये ६ाड़ तथा फल को आक्रान्त करते हैं तथा रस का चूसते है।

प्रबंधन

1. आक्रांन्त पौधे की धड़ को काटकर नष्ट कर दें।
2. गर्मी में खेत की गहरी जुताई करें।
3. फसल चक्र अपनावें।
4. खड़ी फसल में जब कीट की तीव्रता अधिक हो, तो डायमेथोएट 30 ई0सी0 का 2 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़वार करें। आवश्यकतानुसार 15 दिनों के अंतराल के बाद पुनः छिड़काव करें।

दीमक :– यह सफेद भूरे रंग का कीट होता है जो पौधे की जड़ को खाता है। जिससे पौधे सूख कर मर जाते है।

प्रबंधन

1. खेत को खरपतवार से मुक्त करें।

2. खेत की ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई करें।
3. क्योरपायरीफॉस 20 ई0सी0 का 2.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर जड़ भाग के पास छिड़काव करें।

तना छेदक :– इसके पिल्लू काले–भूरे रंग के होते है। जो तने में छेदकर घुस जाते है और भीतरी भाग को खाते हैं जिसके कारण पौधे मर जाते है।

प्रबन्धन

1. खेतों को ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें।
2. खेत को खर–पतवार से मुक्त रखें।
3. कार्बाफयूरान 3 जी0 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से उचित नमी रहने पर खेत में व्यवहार करें।

काला सड़न :– इस रोग के कारण फल पर छोटे –छोटे राख जैसे धब्बे बनते हैं जो बाद में पूरे फल पर छा जाते है।

प्रबन्धन

1. फल को काटने – फटने से बचायें।
2. खेत की अधिक सिंचाई न करें।
3. फल को 5 मिनट तक बेनोमिल 50 घुलनशील चूर्ण का 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल में डुबायें।

कटाई और उपज :– अनानास का फूल – 12 – 15 महीना बाद तथा फल की उपज 15 से 18 महीना के बाद उपज 30–35 टन/हे0।

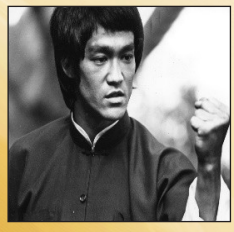

अभ्यास परिपूर्ण बनाता है। लम्बे समय तक अभ्यास करने के बाद, हमारा काम प्राकृतिक, कौशलपूर्ण, तेज और स्थिर हो जाता है।

– ब्रूस ली

सोयाबीन प्रसंस्करण द्वारा महिला सषक्तिकरण

डा. रीता सिंह

कृषि विज्ञान केन्द्र, रोहतास, बिक्रमगंज

- हमारे देश में बच्चे तथा महिलाएँ अत्यंत कुपोषणग्रस्त है तथा यह समस्या ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है। ग्रामीण महिलाएँ अक्सर आवश्यक एवं महत्वपूर्ण भोज्य तत्वों की कमी के कारण अनेक पोषण संबंधी स्वास्थ्य और शारीरिक समस्याओं से ग्रस्त रहती है। इन समस्याओं के कई कारण हो सकते है जैसे :– पर्याप्त पौष्टिक खाद्य पदार्थों एवं संतुलित भोजन के महत्व पर ज्ञान एवं जागरूकता की कमी और इन खाद्यों की समुचित उपलब्धता का अभाव। साथ ही कुछ खाद्य पदार्थों के प्रति अवांछित आदतें तथा धारणाएँ संतुलित भोजन को प्राप्त करने में बाधक बनी हुई है।
- भारत की बढ़ती आबादी के साथ बढ़ती हुई प्रोटीन की जरूरत की समस्या का हल करने की क्षमता सोयाबीन रखता है।
- सोयाबीन कम मूल्य में अच्छे प्रोटीन प्राप्त करने का साधन है और शाकाहारी भोजन में प्रोटीन की आवश्यकता को सहजता से पूरा कर सकता है।
- सोयाबीन में लगभग 40 प्रतिशत प्रोटीन होता है, जो कि किसी भी दलहनी फसल से लगभग दुगुना है। सोयाबीन (100 ग्राम) से प्राप्त प्रोटीन लगभग 1 लीटर दूध या 250 ग्राम मांस या 300 ग्राम अंड़े में उपलब्ध प्रोटीन के बराबर होता है।
- सोयाबीन में न केवल अच्छी गुणवत्ता का प्रोटीन बल्कि अच्छी मात्रा (20%) में उच्च गुणवत्ता का वसा के अलावा कैल्शियम, लौहलवण, विटामिन भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

सोयाबीन के पोषक तत्व (प्रति 100 ग्राम) :–

पोषकतत्व	मात्रा
प्रोटीन	43 ग्राम
वसा	19 ग्राम
खनिज लवण	5 ग्राम
ऊर्जा	432 किलो कैलोरी
विटामिन	426 मिली ग्राम
फॉसफोरस	690 मिलीग्राम
कैल्शियम	240 मिलीग्राम
लौहलवण	10 मिलीग्राम

- कैल्शियम सभी जीवन की प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक तत्व है। भोजन में कैल्शियम की कमी से हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं और बच्चों में सूखा रोग (रिकेट्स) का कारण बनते हैं। कैल्शियम की आवश्यकता गर्भावस्था तथा दुग्धपान अवस्था में काफी बढ़ती है। सोयाबीन में अच्छी मात्रा में कैल्शियम उपलब्ध रहता है जिससे पोषण की कमी से होने वाली कई बीमारियों से बचाता है। इसी प्रकार अन्य दलहन, तिलहन एवं अनाजों की तुलना में सोयाबीन में फॉस्फोरस, लौहलवण अधिक पाये जाते हैं। लौहलवण जो कि रक्त निर्माण के लिए आवश्यक है और इसकी कमी से रक्तहीनता (एनीमिया) होती है, सोयाबीन में अन्य दालों की अपेक्षा अधिक मात्रा में है।

- सोयाबीन में विभिन्न विटामिन जैसे विटामिन ''ए'' ''बी'' एवं ''ई'' अन्य दालों की अपेक्षा अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। विटामिन ''ए'' जो कि कैरोटिन के रूप में दालों में उपलब्ध रहता है सोयाबीन में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

- यदि दैनिक खाद्य में प्रतिदिन समुचित रूप से प्रसंस्करित 30 ग्राम सोयाबीन का उपयोग किया जाए तो मुनष्य अनेक धातक रोगों, जैसे हद्य रोग, मधुमेह, हड्डी की कमजोरी और कैंसर रोगों से दूर रह सकता है और जनसामान्य को स्वस्थ रखने में सहायक होता है।

जहाँ प्रकृति ने सोयाबीन में उच्च मात्रा में अद्भुत गुणों वाले पोषक तत्व प्रदान किये हैं वहीं उसमें कुछ अवांछित ऐसे ऐजाइम भी शामिल कर दिये है जो कि यदि समुचित विधि से एक निश्चित मात्रा तक निष्क्रिय न किये जाये तो वे मनुष्य के पाचन क्रिया और स्वास्थ्य पर विपरीत असर डाल सकते हैं और कुछ शारीरिक समस्याएँ उत्पन्न कर सकते हैं। अतः सोयाबीन को उपयुक्त प्रसंस्करण के बिना उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

सोयाबीन के साथ प्रसंस्करण प्रक्रिया इसलिए भी आवश्यक है कि इसमें पोषकतत्वों की प्रचुर मात्रा के साथ कुछ मात्रा में अपोषक तत्व भी पाये जाते हैं। जिन्हें निष्क्रिय करना आवश्यक है। सोयाबीन को आसानी से घरेलू स्तर पर प्रसंस्करित किया जा सकता है।

01. सोया आटा :– सोया आटा सबसे सरल उत्पाद है, जिसे घरेलू/लघु/कुटीर/ ग्रामीण स्तर पर तैयार किया जा सकता है। यह अक्सर देखा गया है कि लोग कच्चे सोयाबीन को गेहूँ/ अनाजों के साथ मिश्रण करके पीसकर आटा बनवाते हैं तथा इसके बाद चपाती आदि के रूप में उपयोग करते हैं। यह ध्यान रखना बहुत ही महत्वपूर्ण है कि सोयाबीन में बहुत अच्छी पोषकता के अलावा, कुछ अपोषक तत्व भी समाविष्ट होते हैं। इसलिए सोयाबीन को खाने में उपयोग करने से पहले उचित प्रकार से प्रसंस्करित कर लेना चाहिए।

सोयाबीन
↓
सफाई करना
↓
सोयाबीन को 4–5 घंटे पानी में भिगोकर रखना
↓

छिलका हटाकर सोयाबीन को उबालना

↓

सोयाबीन दाल को 8–10 घंटे धूप में सुखाना

↓

सोया दाल को पीसना

↓

सोया आटा

सोया आटा बनाने की विधि

परिपूर्ण प्रोटीन सोया आटा अनाज के आटे में 1 किलोग्राम सोया आटा एवं 9 किलोग्राम गेहूँ आटे के अनुपात में मिश्रण कर उसका उपयोग चपाती, पूरी, पराठा आदि तथा बेकरी उत्पादों को तैयार करने के लिए किया जाता है।

सोया आटा आधारित व्यंजन

सोयायुक्त आटे से चपाती, सोया पालक पराठा, सोया सेब, सोया लड्डू आदि।

02. बेकरी उत्पाद :– बेकरी उत्पादों का सेवन आजकल हर वर्ग के लोग कर रहे हैं। डबलरोटी, टोस्ट, पाव बिस्कुट का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों से लेकर शहरी सभी क्षेत्रो में बढ़ता जा रहा है। सभी बेकरी उत्पाद मूलतः गेहूँ के रिफांइड आटे अर्थात् मैदे से तैयार होते हैं। सोयाबीन का मिश्रण उपरोक्त पदार्थों में करने से न केवल बेकरी उत्पादों की गुणवत्ता बढ़ती है बल्कि कम मूल्य में अच्छे पदार्थ भी ग्राहकों को उपलब्ध होता है। इन उत्पादों की माँग समाज में विशेषकर बच्चे तथा युवा वर्ग में अधिक है। सोयाबीन के मिश्रण से उत्पादों का पोषण मान बढ़ता है।

बेकरी उत्पाद :– ब्रेड, बन, केक, बिस्कुट आदि।

03. सोया दूध एवं सोया पनीर :– सोयाबीन से दूध तथा पनीर (टोफू) उत्पादन घरेलू एवं कुटीर स्तर पर आसानी से किया जा सकता है।

(क) सोया दूध :– एक किलोग्राम सोयाबीन से करीब 6–8 लीटर दूध अथवा 1.5–1.7 किलो ग्राम तक सोया पनीर प्राप्त किया जा सकता है। मलमल के कपड़े से छानने के बाद द्रव पदार्थ सोया दूध कहलाता है तथा ठोस पदार्थ ओकारा।

सोयाबीन/सोयाबीन दाल

↓

सफाई एवं छंटाई

↓

पानी में भिगोना 6–8 घंटे तक (1:3)

↓

गरम पानी के साथ पीसना

↓

6–8 लीटर तक पानी मिलाकर घोल बनाना

↓

प्राप्त घोल को 15–20 मिनट तक उबालना

↓

मलमल के कपड़े से छानना ओकारा

↓

सोया दूध

सोया दूध तैयार करने की विधि

सोया दूध से बनने वाले खाद्य पदार्थ :– सोया दही, सोया लस्सी, सोया मट्ठा, सोया दूध की बर्फी, पनीर पकौड़ा, पनीर पराठा।

(ख) सोया पनीर (टोफू) :– सोया पनीर बनाने के लिए सोया दूध का उपयोग किया जाता है। सोया दूध को फाड़कर (नींबू/फिटकरी) ठोस पदार्थ प्राप्त किया जाता है जिसे 'सोया पनीर' अथवा टोफू कहा जाता है।

04. सोया उपउत्पाद आधारित खाद्य पदार्थ :– 'ओकारा' सोया दूध बनाते समय प्राप्त होने वाला ठोस पदार्थ है। 1 किलो सोयाबीन से दूध बनाते समय लगभग 1.25 किलो ओकारा प्राप्त होता है। ताजे ओकारे का उपयोग प्रतिदिन के भोजन में बनने वाले खाद्य पदार्थ में पोषण मूल्यों की वृद्वि करने हेतु किया जा सकता है। परन्तु इसे सुखाकर रखने से अन्य पदार्थों जैसे–चपाती/रोटी/पुड़ी/पराठा/पकौड़ा/हलुआ इत्यादि पदार्थों में उपयोग में लाया जा सकता है।

ये हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी स्वतंत्रता का मोल अपने खून से चुकाएं, हमें अपने बलिदान और परिश्रम से जो आज़ादी मिले, हमारे अन्दर उसकी रक्षा करने की ताकत होनी चाहिए।

– सुभाष चंद्र बोस

सब्जियों की संरक्षित खेतीः अर्थोपार्जन का उत्तम विकल्प

डा. वि. के. पांडे

कृषि विज्ञान केन्द्र, सहरसा

हमारे देश में जहाँ आबादी एक अरब पच्चीस करोड़ से भी अधिक है वहाँ 35–40 प्रतिशत जनसंख्या केवल शहरों में रह रही है तथा शहरी आबादी का यह अनुपात वर्ष 2025 तक लगभग 60 प्रतिशत तक बढ़ने की उम्मीद है। प्रतिदिन गाँव से शहरों की तरफ युवा रोजगार व बेहतर भविष्य की उम्मीद में हजारों की संख्या में विस्थापित हो रहे हैं। यह विस्थापन एक ओर रोजगार के विकल्प पर प्रशनचिन्ह लगा रहा है वही दूसरी तरफ बढ़ती शहरी जनसंख्या खाद्य आपूर्ति पर भी गंभीर दबाव बढा रही है। इस शहरी आबादी में प्रति व्यक्ति कम आय वाले लोग अपनी लगभग 50 से 80 प्रतिशत तक आय भोजन उपलब्ध करने में लगा देते हैं। इस वर्ग के भोजन की गुणवत्ता भी अच्छी नहीं होती जिनमें मुख्य पोषक तत्वों की मात्रा आवश्यकता से कहीं कम होती है।

संरक्षित खेती की आवश्यकताः

हमारे देश में जितनी भी कृषि नीतियाँ बनी हैं वे मुख्यतः ग्रामीण परिस्थितियों के ही अनुकूल बनी है और शहरों में खाद्य आपूर्ति पूर्णतया ग्रामीण उत्पादन पर ही निर्भर है। इसमें अब काफी सुधार की आवश्यकता है। शहरी क्षेत्रों की खाद्य आपूर्ति के लिए ग्रामीण इलाकों से उन फसलों की आयात तो बिल्कुल ठीक व उचित है जो ज्यादा समय तक खराब न हो परन्तु वे खाद्य पदार्थ जो जल्दी ही खराब हो सकते हैं उनके लिए यदि शहरी क्षेत्रों को ही उनके उत्पादन हेतु उपयोग में लाया जाये तो शीध्र खराब होने वाले सब्जियाँ बहुत कम समय में ही उपभोक्ता को न सिर्फ ताजी खाद्य सामाग्री ही मिलेगी बल्कि उत्पादों के दाम भी कम हो जायेंगे तथा तुड़ाई उपरान्त होने वाले नुकसान को भी काफी हद तक कम करने में मदद मिलेगी।

शहरों में बढ़ रही है सब्जियों की माँगः

यही नहीं आजकल बड़े शहरों में रहने वाली जनसंख्या का एक बड़ा वर्ग काफी हद तक समृद्ध तथ अमीर है जो स्वास्थ के प्रति पुर्णतया जागरूक है तथा दैनिक उपयोग में आने वाली यब्जियों का कोई भी भाव देने को तैयार है, लेकिन यह वर्ग इन उत्पादों में उच्च गुणवत्ता तथ उनकी निरन्तर उपलब्धता

चाहाता है। दूसरी तरफ शहरों में रहने वाला उच्च मध्यम वर्ग तथा मध्यम वर्ग भी आजकल स्वास्थ के प्रति काफी सचेत हो रहा है तथा वह भी धीरे–धीरे सब्जियों में गुणवता की तरफ आकर्षित हो रहा है। इन्हीं सभी कारणों से आजकल बड़े शहरों में उच्च गुणवत्ता की सब्जियों की माँग निरन्तर बढ़ रही है। साथ ही साथ इन उत्पादों की बेमौसमी माँग भी इन शहरों में लगातार बढ़ रही है। शहरों के चारों ओर खेती करने वाले किसान परम्परागत खेती में बदलाव करके उच्च गुणवत्ता वाली ताजी सब्जियों का उत्पादन कर रहे हैं। शहरी क्षेत्रों में रहने वाले किसान सब्जियों की बेमौसमी खेती करके भी बहुत अधिक लाभ कमा सकते हैं। लेकिन उच्च गुणवत्ता तथा बेमौसमी सब्जियों का परम्परागत खेती द्वारा उत्पादन करना संभव नहीं है। इसके लिए शहरी क्षेत्रों में स्थित किसानों को उनकी संरक्षित खेती को अपनाना होगा, जो निश्चित तौर पर उनकी उच्च गुणवत्ता तथा दीर्धावधि तक उनकी उपलब्धता सुनिश्चत कराने से सक्षम हैं।

हमारे देश में सब्जियों की कम उत्पादकत्ता एवं निम्न गुणवत्ता का मुख्य कारण उनकी खेती का लगभग शत् प्रतिशत खुले वातावरण में किया जाना तथा दुसरे कृषकों द्वारा सब्जी उत्पादन में अभी भी परम्परागत विधियों तथा तकनीकों का अपनाया जाना है। खुले वातावरण में अनेकों प्रकार के जैविक व अजैविक कारणों द्वारा सब्जी फसलों को भारी नुकसान पहुँचाया जाता है। जिसके कारण उनकी उत्पादकत्ता एवं गुणवत्ता का दुष्प्रभाव पड़ता है। इन जिवित कारकों में मुख्यतः विभिन्न प्रकार के विषाणु रोग, विभिन्न प्रकार के कीड़े–मकौड़े, विभिन्न प्रकार के कवक विभिन्न प्रकार के जिवाणु एवं सुत्र कृमि आदि प्रमुख हैं तथा ये जीवित कारक अधिकतर वर्षा कालीन मौसम में उगाई जाने वाली सब्जी फसलों को ज्यादा नुकसान पहुँचाते है। मुख्य अजैविक कारकों में तापमान आर्द्रता एवं प्रकाश आदि प्रमुख हैं जिनकी अधिकता एवं अत्यधिक कमी प्रमुख रूप से विभिन्न सब्जी फसल की उत्पादकता एवं गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं। तापमान की अत्यधिकता फसलों को झुलसाकर तथा अत्यधिक कम तापमान उसे पाले से ग्रस्त कर नुकसान पहुँचाते हैं। जबकि अत्यधिक आर्द्रता विभिन्न प्रकार के कवक एवं जीवाणु जनित रोगों के प्रकोप में सहायक होती है। वहीं अत्यधिक कम आर्द्रता अधिक तापमान के साथ मिल कर फसलों को झुलसा कर नुकसान पहुँचाता है। ठीक इसी प्रकार की अत्यधिक कमी के कारण फसलें समुचित प्रकाश संशलेषण की प्रक्रिया नहीं कर पाती हैं। जिसका सीधा प्रभाव उपज व गुणवत्ता पर पड़ता है। ठीक इसी प्रकार प्रकाश की अत्यधिक तीव्रता भी विभिन्न फसलों पर विपरित प्रभाव डाल कर उपज एवं गुणवत्ता को प्रभावित करती है।

संरक्षित खेती का तात्पर्यः

जब हम किसी फसल का उत्पादन, मुख्य जैविक या अजैविक कारकों से बचाते हुए सुरक्षा प्रदान कर, करते हैं तो उसे संरक्षित खेती कहते हैं।

संरक्षित खेती को अपनाना मुख्यता कई महत्वपूर्ण बातों पर निर्भर करता हैः

1. जहाँ कोई संरक्षित खेती करना चाहता है तो वहाँ वातावरण की क्या परिस्थितियाँ हैं,
2. किन–किन बागवानी फसलों की संरक्षित खेती करना चाहते हैं,
3. संरक्षित खेती अपनाने वाले के पास कितने संसाधन हैं,

4. यदि संरक्षित खेती को बढ़ावा देने के लिए सरकार की योजनाएँ हैं तो वो वास्तव में कितनी कारगर हैं,
5. यदि कोई संरक्षित खेती करता है तो ऐसे उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों आदि को बेचने के लिए कौन से बाजार की आसानी से उपलब्धता है,

फसलों की संरक्षित खेती के मुख्य लाभः

1. मुख्य जीवित व अजीवित कारकों से फसल की सुरक्षा
2. उच्च उत्पादकत्ता सामान्यतः खुले खेतों से 5 से 10 गुणा अधिक
3. उच्च गुणवत्ता प्राप्त करना संभव जो खुले वातावरण में फसलें उगाकर प्राप्त करना असंभव
4. लम्बी अवधि तक सब्जियों की लगातार उपलब्धता
5. अधिक लाभ के लिए बेमौसमी फसल उत्पादन की पूर्ण सम्भावना
6. प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल व भूमि आदि का सदुपयोग पूर्णतः संभव
7. जैविक खेती का मजबूत आधार, अन्यथा खुले खेत में सब्जी फसलों की जैविक खेती करना काफी असम्भव होता है
8. सुरक्षित सब्जी उत्पादन करना संभव
9. कम क्षेत्रफल में अधिक लाभ लिया जाना संभव जो खुले खेतों में बहुत कम होता है
10. अधिक रोजगार सृजन की संभावनाएँ खुले खेतों में 5 से 6 गुणा अधिक
11. शहरी क्षेत्रों के लिए अत्यधिक उपयोगी प्रौधौगिकी
12. संरक्षित उत्पादन प्रौद्यौगिकी विभिन्न प्रकार की जलवायु वाले क्षेत्रों के लिए उपयोगी व कारगर

विभिन्न संरक्षित संरचनायें तथा उनका संरक्षित सब्जी उत्पादन में उपयोगः

मुख्यतः सब्जी उत्पादन हेतु उचित व उपयुक्त संरक्षित संरचना की आवश्यकता उस क्षेत्र की जलवायु पर निर्भर करती है। लेकिन इसके अतिरिक्त किसान की आर्थिक स्थिति, टिकाऊ व उच्च बाजार की उपलब्धता, बिजली की उपलब्धता, भूमि का प्रकार आदि कारण भी इसकी खेती को निर्धारित करतें हैं। विभिन्न देशों में सब्जियों के वर्षोवार व बेमौसमी उत्पादन हेतु मुख्यतः वातावरण अनुकुलित ग्रीनहाउस, प्राकृतिक वायु संवाहित ग्रीन हाउस, कम लागत वाले पोली हाउस, वाक–इन–टनल, कीट अवरोधी नेट हाउस, प्लास्टिक लो–टनल, आदि के प्रयोग द्वारा आवश्यकतानुसार वर्ष भर व मुख्यतः बेमौसमी सब्जी उत्पादन हेतु उपयोग में लिया जाता है जिनको हमारे देश के विभिन्न शहरी क्षेत्रों में अपनाने की अपार संभावनायें हैं।

अर्द्ध–वातानुकुलित ग्रीनहाउसः

यह एक ऐसा ग्रीनहाउस है जिसमें गर्मी के दिनों में ग्रीनहाउस के अन्दर तापमान को नियंत्रण करने के लिए कूलिंग पैड लगे होते हैं तथा सामान्य गर्मी के समय यह घर में उपयोगी कूलर के आधार पर ही कार्य करता है। लेकिन यह कूलिंग तब अच्छी प्रकार से कार्य करती है जब हवा में नमी कम हो आर्द्रता 30 प्रतिशत या इससे कम हो–इस प्रकार उत्तर भारत में मध्य अप्रैल से जून तक यह कूलिंग प्रणाली हो आर्द्रता 30 प्रतिशत या इससे कम हो इस प्रकार उत्तार भारत में मध्य अप्रैल से जून तक यह कूलिंग प्रणाली बहुत अच्छी तरह प्रभावित होती है तथा कभी इसे सितम्बर व अक्टूवर माह में भी आवश्यकतानुसार उपयोग में लाया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार दिसम्बर तथा जनवरी माह में अन्दर के तापमान को रात में गर्म करने के लिए हीटर भी लगाया जा सकता है। ग्रीनहाउस के अन्दर के तापमान को रात के समय 12 या 13 डिग्री सेल्सियस से नीचे नहीं जाने दिया जाता है तथा फिर इसके दैनिक रख–रखाव पर भी भारी खर्चा होता है क्योंकि इसे मौसम के अनुसार ठंडा या गर्म रखने में ऊर्जा की काफी खपत होती है। इससे उत्पादन लागत अत्यधिक बढ़ जाती है, जिसे वहन करना साधारण कृषकों के लिए संभव नहीं है। यह तभी संभव हो सकता है जबकि सब्जी उत्पादकों की सब्जियाँ बहुत ऊँचे बाजार में बहुत अधिक भाव पर बिके तथा उस क्षेत्र में बगैर रूकावट के बिजली की आपूर्ति जारी रहती है। आमतौर पर इस प्रकार के ग्रीनहाउस में बड़े आकार का टमाटर, चेरी, लाल व पीले रंग की शिमला मिर्च आदि फसलों को वर्ष भर के लिए उगाया जाता है तथा अधिक उत्पादन के साथ–साथ अधिक गुणवता वाली सब्जियाँ भी पैदा की जाती है।

प्राकृतिक वायु संवाहित ग्रीनहाउसः

इस प्रकार के ग्रीनहाउस को बनाने पर सामान्यतः वातानुकूलित ग्रीनहाउस के मुकावले एक तिहाई या एक चौथाई से भी कम लागत आती है तथा इस प्रकार के ग्रीनहाउस को चलाने हेतु या तो ऊर्जा की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है या केवल हवा को बाहर निकालने वाली पंखों को चलाने हेतु बहुत कम ऊर्जा की जरूरत पड़ती है। सामान्य रूप से इस प्रकार की संरचना का उपयुक्त ग्रीनहाउस बनवाने पर 600 से 650 रूपये प्रति वर्गमीटर के हिसाब से खर्चा होता है। इस प्रकार के ग्रीनहाउस में टमाटर की फसल को 8 से 9 माह सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। शिमला मिर्च को भी 8 से 9 माह तक उगाया जा सकता है। जबकि उच्च गुणवता वाले बीज रहित खीरे की फसल को वर्ष में तीन बार उगाया जा सकता है। खीरे की पहली फसल की रोपाई अगस्त के प्रथम सप्ताह में तथा दूसरी फसल की रोपाई मध्य अक्टूबर से अक्टूबर के तृतीय सप्ताह तक तथा तीसरी फसल की रोपाई फरवरी प्रथम सप्ताह में की जा सकती है तथा इस प्रकार 9 से 9 महीने में लगातार तीन फसल संभव है। इसके अतिरिक्त इसमें बेमौसमी शिमला मिर्च, खरबूजा व अन्य बेल वाली सब्जियों को भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

कीट अवरोधी नेट हाउसः

इस प्रकार की संरचनाओं को बनाने के लिए आधा इंच मोटाई की जी आई पाइपों को अर्द्धगोलाकार

रूप में मोड़कर, भूमि में गाड़े गए सरिए के टुकड़ों के सहारे खड़ा किया जाता है। इस प्रकार पाइपों को 210–215 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। फिर इन्हें कीट अवरोधी नाइलोन नेट से ढंका जाता है जाली को प्रति वर्ग इंच भाग में बने छिद्रों के आधार पर उपयोग में लिया जाता है तथा जिस जाली में 40 से 50 छिद्र प्रति इंच के हिसाब से हों। इस प्रकार की संरचनाओं में बरसात या उसके बाद विषाणु रोगों से फसलों को बचाने के लिए इनमें उगाया जाता है। बरसात या बरसात के बाद मध्य अक्टूबर तक अनेक कीटों खासकर सफेद मक्खी जो विषाणु रोग को फैलाती है, की जनसंख्या बहुत ज्यादा बनी रहती है। अधिकतर किसानों को बरसात के मौसम में टमाटर, मिर्च व शिमला मिर्च तथा भिण्डी आदि फसलों को उगाने में इन कीटों खासकर सफेद मक्खी के कारण बहुत कठिनाई होती है। अधिकतर किसान टमाटर जैसी फसल को इस मौसम में विषाणु रोग के कारण उगाने में असफल रहते हैं। लेकिन यदि किसान कम क्षेत्रफल में टमाटर, मिर्च, शिमला मिर्च आदि फसलों की पौध इस प्रकार की संरक्षित संरचनाओं (नेट हाउस) के अंदर तैयार करें ताकि पौधें को पूर्ण रूप से विषाणु रोग रहित तैयार किया जा सके।

पॉली हाउस की संरचना :

पॉली हाउस के अन्तर्गत उद्यानिक फसलों एवं फूलों की संरक्षित खेती से वर्षभर बेमौसमी खेतीकर प्रति वर्गमीटर उत्पादन को सामान्य खेती की तुलना में 3–4 गुणा बढ़ा सकते हैं।

पॉली हाउस का आकार निर्धारित करने वाले कारक:

(क) पूंजी (ख) जल की उपलब्धता (ग) बिजली (घ) फसल (च) विक्रय के साधन

पॉली हाउस घरनुमा ढाँचे पर निर्मित संरचना होती है, जिसको 200 से 400 माईक्रॉन मोटी परावैगनी किरणों से अवरोधी सफेद रंग की पारदर्शी प्लास्टिक चादर (Sheet) से ढका जाता है। इसमें फसलों के अनुसार वातावरण नियंत्रित करके फसल उत्पादन लिया जा सकता है।

संरचना की आकृति:

(क) सॉ टूथ (ख) एरोडायनेमिक (ग) डॉम आकार (घ) हट आकार

पॉली हाउस में पौध सिंचाई व्यवस्था:

पॉली हाउस में पौधों को सिचाई हेतु ड्रिप सिंचाई प्रणाली का उपयोग आर्थिक एवं पौधों की वृद्धि का सर्वोत्तम विकल्प है इस विधि में पौधे के जड़ के पास इमीटर (ड्रिपर) की सहायता से बुँद के रूप में जल को लगभग वायुमंडलीय दाव पर गिराया जाता है, जो उस समय पौधें की वृद्धि के लिए जल की आवश्यक मात्रा होती है। इस प्रणाली से सिंचाई के निम्नलिखित लाभ हैं:

- लगभग 90 प्रतिशत सिंचाई जल उपयोग क्षमता की संभावना, परिणामतः सिंचाई जल का सदुपयोग एवं जल निकासी में ऊर्जा की बचत
- जल का पौधों के जड़ों के करीब गिरने के कारण शेष भूमि में घास–पात की समस्या से निजात

- जल के साथ उर्वरक तरल रूप मे देने की व्यवस्था
- उपज की गुणवता में सुधार
- पौधों के जड़ क्षेत्र से नमक को दूर रखना संभव होता है

इस प्रकार पॉली एवं नेट हाउस का प्रयोग कर बाजार व्यवस्था के अनुसार सब्जियों एवं फूलों का उत्पादन आर्थिक दृष्टिकोण से लाभप्रद होगा। प्रारम्भिक लागत खर्च जिसमें पॉली हाउस एवं सिंचाई व्यवस्था के प्रतिस्थापन में अधिक होने के अपेक्षा बाजार व्यवस्था के अनुरूप उत्पादों को बाजार में बिक्रय कर इस खर्च को संतुलित किया जा सकता है, जो बाद के वर्षों में अधिक लाभप्रद प्रतित होंगे।

पुस्तकें वो साधन हैं जिनके माध्यम से हम विभिन्न संस्कृतियों के बीच पुल का निर्माण कर सकते हैं।

– सर्वपल्ली राधाकृष्णन

टिकाउ खेती में जैविक खाद का महत्व एवं निर्माण

डा. शमेश्वर प्रसाद

कृषि विज्ञान केन्द्र, सीतामढ़ी

परिचय

आज खेती के लिए आवश्यक खाद एवं कीटनाशक रसायनों की बढ़ती हुई खपत ने कई जटिल समस्याओं को जन्म दिया है। विभिन्न प्रकार के प्रदूषण का फैलना, जल की कमी, कूड़ा – करकट तथा कचरे की मात्रा में हो रही लगातार वृद्धि जैसी समस्याओं ने मनुष्य और पर्यावरण के समक्ष भयंकर स्थिति उत्पन्न कर दी है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए यह जरूरी हो गया है कि हम वैकल्पिक साधनों का प्रयोग अभी से प्रारम्भ कर दें। जैविक खाद का उपयोग हमारे समक्ष एक ऐसा विकल्प है जिसके द्वारा हम टिकाऊ खेती कर कृषि एवं पर्यावरण दोनों के साथ – साथ स्वयं को भी खुषहाल बना सकते हैं। जैविक खाद, जिनमें मुख्य रूप से वर्मीकम्पोस्ट, नेडेफ तथा एफ. वाई. एम. है। इसमे सबसे सरल एवं उत्तम वर्मीकम्पोस्ट है। जिसका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है।

सरल शब्दों में कृत्रिम विधि द्वारा केंचुआ पालने को वर्मी कल्चर और केंचुए द्वारा बेकार कार्बनिक पदार्थो से जैविक खाद मिलने की प्रक्रिया को वर्मी कम्पोस्टिंग कहते हैं। कृत्रिम विधि से केंचए पालना (वर्मीकल्चर) और केंचुए की मदद से जैविक खाद बनाना दो अलग–अलग परन्तु मिली –जुली क्रियायें हैं। इस क्रिया को वर्मी टेक्नोलॉजी कहते हैं। वर्मी कल्चर और वर्मीकम्पोस्टिंग का उपयोग हमारी कृषि के लिए बरदान साबित हो सकता है, क्योंकि केंचुए सड़े–गले पदार्थ को जैविक खाद में तब्दील कर देते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट में पोषक तत्वों की मात्रा : वर्मीकम्पोस्ट में सारे पोषक तत्व प्रचूर मात्रा में उपलब्ध रहता हैं। जिसका विवरण निम्न प्रकार है।

पोषक तत्व	मात्रा (%)
ऑर्गेनिक कार्बन	: 12.2 – 25.0
कुल नेत्रजन	: 1.2 – 2.1
उपलब्ध स्फूर	: 0.68–1.48
उपलब्ध पोटाश	: 0.36 – 0.72

सूक्ष्म पोषक तत्व (मिग्रा./किग्रा.)

लोहा	: 2500–3000
जस्ता	: 100–150
ताँबा	: 50–100
मैंगनीज	: 250–300

केंचुआ खाद तैयार करने हेतु प्रयोग की जाने वाली प्रजातियाँ : विश्व के विभिन्न भागों में 4500 प्रजातियाँ बतायी जा चुकी हैं। आज केंचुए की कुछ ऐसी प्रजातियाँ विकसित कर ली गई हैं जिनको पाकर किसान प्रतिदिन के कूड़ा–करकट को एक अच्छी खाद वर्मी कम्पोस्ट में बदल सकते हैं। दो प्रजातियाँ सबसे उपयोगी पायी गयीं जिनका नाम ऐसीनिया फोटिडा (लाल केंचुआ) तथा युड्रिलय युजीनी (भूरा गुलाबी केंचुआ) है।

कम्पोस्ट बनाने की विधि

केंचुआ खाद बनाने की विधि बहुत ही सरल तथा सस्ती है। इससे बेरोजगार युवक नवयुवक काफी पैसा कमा सकते हैं।

औद्योगिक स्तर पर केंचुआ खाद तैयार करने की निम्नलिखित दो विधियाँ हैं।

1. विन्डरोज विधि

2. मोड्युलर विधि

क्योंकि मोड्युलर विधि में एक बना हुआ बक्सा खरीदने की जरूरत पड़ती है अतः यह विधि खर्चीली होने के कारण आम किसानों के लिए उपयोगी नहीं है। विन्डरोज विधि किफायती होने के कारण अधिक लोकप्रिय है जिसका वर्णन नीचे किया गया है।

मूलभूत सुविधा : केंचुआ धूप सहन नहीं कर सकते अतः सबसे पहले 5 फुट चौड़ा व 20 फुट लम्बा बाँस या लकड़ी का छप्पर खड़ा करते हैं तथा खपड़ा अथवा पुआल से छत बना दिया जाता है। इसकी ऊँचाई इतनी होनी चाहिए कि आदमी आराम से पानी दे सके। स्थान के चुनाव के समय यह ध्यान देना चाहिए कि वहाँ पर बरसात का पानी इक्ट्ठा न हो। अतः हमेशा ऊँची जमीन का चुनाव करना चाहिए।

जैविक पदार्थो की पूर्व उपचार : जैविक पदार्थ जैसे गोबर, कूड़ा–करकट, पौधों का अवशेष तथा घास फूस, हरी पत्ती आदि से पहले पालिथीन, पत्थर आदि अगर हो तो चुन कर अलग कर लेना चाहिए। उसके बाद उसका छोटा–छोटा टुकड़ा कर देना चाहिए। सब्जियों के अवशेष कुड़ा करकट आदि को गोबर के साथ मिलाने के बाद 10 से 15 दिन तक अलग जगह पर आंशिक विघटन के लिए छोड़ दिया जाता है। गोबर एवं अन्य पदार्थो का अनुपात बराबर होना चाहिए। आंशिक विघटन के बाद वर्मी कम्पोस्ट यूनिट में इसे प्रयोग किया जाता है।

पहला चरण : शेड के नीचे जमीन को समतल बनाकर इसे भिंगोकर सड़ने वाला पदार्थ रखा जाता है।

दूसरा चरण : पहली सतह, धीरे–धीरे सड़ने वाले पदार्थो जैसे – नारियल के छिलक, केले के पत्ते या छोटे टुकड़ों में कटे बाँस से तैयार किया जाता है। इस सतह की मोटाई लगभग 3'' से 4'' होना आवश्यक है। इस सतह को बेड कहा जाता है। कठिन समय पर केंचुआ इसे घर के रूप में इस्तेमाल करता है।

तीसरा चरण : दूसरी सतह भी करीब 3'' से 4'' मोटी होती है जो कि बेडिंग पदार्थ के ऊपर बिछाई जाती

है। इस सतह में मुख्यतः आधा सड़े हुए गोबर का इस्तेमाल किया जाता है ताकि सड़ने के समय पदार्थ में ज्यादा गर्मी पैदा नहीं हो। अगर इस पदार्थ में नमी की कमी हो तो हर सतह में पानी का छिड़काव करना आवश्यक है।

चौथा चरण : दूसरी सतह के ऊपर केंचुओं को हल्के से रखा जाता है। एक वर्ग मीटर जगह के लिए 250 केंचुओं की जरूरत है। केंचुओं को छोड़ने के पश्चात बहुत जल्दी ये दूसरी सतह के नीचे घुस जाते हैं क्योंकि ये अपने को बाहर में खुला रखना पसन्द नहीं करते हैं।

पांचवाँ चरण : छोटे टुकड़ों में कटा हुआ हरा या सूखा जैविक पदार्थ एवं गोबर आधा–आधा हिस्सा (50:50) में मिलाकर आखिरी सतह में दिया जाता है। यह सतह तकरीबन 4'' से 5'' मोटी होती है। इस तरह ढ़ेर की ऊँचाई करीब 1.0 से 1.5 फुट हो जाती है।

छठवाँ चरण : आखिरी सतह को पूरी क्यारी के लम्बाई के बराबर जूट के कपड़े से ढ़क दिया जाता हैं पूरे ढ़ेर को ढ़ँकना आवश्यक है। जूट का फटा हुआ बोरा इस काम में इस्तेमाल किया जा सकता है।

बोरे के ऊपर नियमित रूप से पानी का छिड़काव आवश्यक है। नमी लगभग 60 प्रतिशत बनी रहनी चाहिए।

सांतवाँ चरण : जब केंचुआ तैयार हो जाए तो इसमें पानी का छिड़काव बन्द कर देना चाहिए तथा उसे सूखने देना चाहिए। इसके बाद ऊपर में आधा सड़े हुए गोबर की एक पतली परत देनी चाहिए। सारे केंचुए इस परत में आ जाते हैं। तत्पश्चात इन केंचुओं को ऊपर की परत समेत इकट्ठा कर लेते हैं। मोटी छलनी से छान कर भी केंचुआ को अलग किया जा सकता है।

आंठवाँ चरण : ऊपर के दो स्तर केंचुआ खाद के रूप में इकट्ठा कर लिये जाते हैं। बेड को सुरक्षित रखा जाता है तथा पुराने बेड के उपर दूसरी खेप की तैयारी पुनः पहले चरण से शुरू कर देनी चाहिए।

वर्मी कम्पोस्ट की पैकिंग

वर्मी पीट/टैंक/ढ़ेर से निकाले गये कम्पोस्ट को 3–4 दिनों तक छाया में सुखाकर बालू चालने वाली महीन तार की जाली से छान लेना चाहिए जिससे छोटे केंचुए, कोकून एवं बिना खाये हुए व्यर्थ पदार्थ अलग हो जाए जिसे पुनः वर्मी बेड में मिला दिया जाता है। अब छनी हुई कम्पोस्ट को प्लास्टिक या जूट के थैलों में भरकर रख लें। तैयार एवं भंडारित कम्पोस्ट में 7–8 प्रतिशत नमी होनी चाहिए। इसका भंडारण ठंढ़ा, शुष्क एवं छायादार स्थानों में करना चाहिए।

केंचुआ खाद प्रयोग के सामान्य दिशा निर्देश

गमलों में : एक से दो माह पुराने गमलों की दो ईंच ऊपरी मिट्टी हटाकर गड्ढ़ों में केंचुआ खाद भरकर हल्की सिंचाई कर दें।

अन्य गमलों में : रोपित पौधे जिसकी मिट्टी हटाने से उसके सूख जाने की या घर का फर्श होने की संभावना हो वहाँ प्रति किलो केंचुआ खाद को 5 लीटर पानी में घोल बनाकर आवश्यकतानुसार सिंचाई कर दें।

कटिंग उगाने में : तीन भाग बालू में एक भाग केंचुआ खाद मिलाकर पॉलीथीन की छोटी–छोटी थैलियों

में भरकर छोटे–छोटे छिद्र बना दें, तत्पश्चात् कटिंग लगाकर लगभग हल्की सिंचाई कर दें।

नर्सरी क्यारियों से : बीजों की प्रकृति के आधार पर जमीन की मिट्टी को 2 से 4 ईंच गहरा खोद कर 5 से 8 किलो केंचुआ खाद प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र के अनुसार मिट्टी में मिलाकर बीजाई करें।

बागवानी :

फलदार वृक्षों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए केंचुआ खाद एवं गोबर की खाद को बराबर मात्रा में मिश्रित कर पौधे के चारों तरफ गड्ढ़ा बनाकर मिश्रण को डालना चाहिए और इसे पानी से नम करना चाहिए। ध्यान रखें दीमक न लगने पाये (नीम की खली का प्रयोग करें)।

सजावटी पौधे में : 2 भाग केंचुआ खाद एवं 3 भाग उद्यान की मिट्टी का मिश्रण बनाकर पौधे लगायें।

फल युक्त वृक्षों में : 5 किलो केंचुआ खाद इतनी ही मात्रा में गोबर की खाद मिश्रित कर फलदार पेड़ों के आसपास की मिट्टी में मिलाकर आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।

सब्जी की फसल में : तैयार खेत में बुआई के पहले 30 से 35 क्विंटल केंचुआ खाद/एकड़ क्षेत्र के अनुसार दोपहर बाद खेतों में डालें एवं सुबह हल चलाकर पाटा लगा दें। तत्पश्चात सब्जी लगायें।

कृषि फसलों में : सामान्यतया केंचुआ खाद गोबर की खाद बराबर मात्रा में 5 क्विंटल/एकड़ की दर से प्रयोग किया जाता है।

औषधीय पौधों में : औषधीय पौधों की खेती (छमाही फसल) हेतु 30 क्विंटल केंचुआ खाद एवं 125 से 150 किलो पिसी हुई नीम की खल्ली मिश्रित कर प्रति एकड़ खेतों में प्रयोग करें।

तिलहन फसलों में : तैयार खेत में बुआई के पहले 8 से 10 क्विंटल केंचुआ खाद/एकड़ की दर से भली प्रकार मिश्रित कर बीजाई करें।

नगदी फसलों (गन्ना, सूरजमुखी, मिर्च) में : तैयार खेत में बुआई के पहले 15 से 20 क्विंटल केंचुआ खाद/एकड़ की दर से समान मिश्रित कर बीजाई करें।

सावधानियाँ

1. कृषक बन्धु आवश्यक प्रशिक्षण लेकर ही उत्पादन प्रारम्भ करें अन्यथा रख–रखाव व देखभाल में लापरवाही से केंचुए मर सकते हैं एवं खाद की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है।
2. उत्पादन स्थल : वैसे स्थान जहाँ बरसात का पानी नही जमता हो तथा सूर्य की सीधी रोशनी न पड़ती हो, छायादार हों।
3. बजट का निर्धारण : अपने बजट के अनुसार उत्पादन इकाई का निर्माण करें।
4. नवनिर्मित गड्ढ़े में पहले से तैयार रखे गोबर व कचरे के उचित मिश्रण को किसी विशेशज्ञ की उपस्थिति में पहली बार केंचुआ प्रविष्ट कर दें। तत्पश्चात् उस गड्ढ़े या ढ़ेर को पुआल या अन्य कृषि अवशेष से ढ़ँककर जल से सिंचित कर लें।

5. गोबर एवं कार्बनिक कचरा 15 से 20 दिन पुराना होना चाहिए तथा रेशेदार व षाक–सब्जी के कचरे को 20 दिन तक सड़ाने के बाद डालना चाहिए।

6. सड़ाने के दौरान कचरे में पानी छिड़ककर हर तीसरे–चौथे दिन पलटना चाहिए।

7. केंचुओं को सूर्य की रोशनी, अत्यधिक गर्मी, पानी एवं परभक्षियों जैसे चींटी, मेढ़क, सर्प, पक्षी इत्यादि से बचाव हेतु उपाय करें।

8. गड्ढ़े में नमी तथा ठण्डा बनाये रखने हेतु पानी का नियमित छिड़काव इस प्रकार करें कि न पानी जमे न ही पानी में पोषक तत्व घुलकर बहें।

9. एक माह बाद 10 से 20 दिनों का सड़ाया कचरा पुनः उस गड्ढ़े में मिला दें।

10. खाद तैयार होने के बाद केंचुए को सावधानी से अलग करें ताकि वे मरे नहीं। सम्पूर्ण केंचुओं को सुरक्षित पृथक करने हेतु इसे हाथ से भी चुनकर अलग किया जा सकता है।

11. खाद को समय रहते वांछित नाप की पन्नी या बोरी में आवश्यकतानुसार खोलकर सीलबंद कर दें ताकि उसमें नमी बनी रहें।

12. सील करते समय बोरी में कुछ स्थान खाली छोड़ दें जिससे उसमें हवा रह सकें।

13. सीलबंद बोरियों का षुश्क, ठण्डे व छायादार स्थान में भण्डारित कर लें एवं आवश्यकतानुसार उपयोग में लायें।

14. केंचुओं के खाद्य पदार्थ में तेल, रसायन, धातु, प्लास्टिक, कीटनाशी, साबुन, सर्फ, नींबूवर्गीय फलों के उत्पाद, लहसुन, प्याज, लौंग, ज्यादा गर्म पदार्थ एवं ज्यादा मसालेदार पदार्थ न मिलायें।

15. चींटी से बचाने के लिए बेड के कचरे में पर्याप्त नमी बनाये रखें एवं हमेशा उलटते–पलटते रहें।

16. मक्खियाँ लगने पर फलों वाले उत्पादन को कचरे के अन्दर दबा दें एवं ऊपर से अखबार को बिछाकर नमी बना लें।

17. थोड़े दिनों के लिए बाहर जाना हो तो उसे अच्छी तरह से ढ़ंककर जा सकते हैं लेकिन एक महीना या उससे ज्यादा दिनों के लिए जाना हो तो किसी पड़ोसी या मित्र को केंचुओं को देखभाल के लिए बोलकर जा सकते हैं।

18. खाद्य पदार्थों की अम्लीयता को हमेशा जाँच करते रहें। अगर अम्लीय हो जाता है तो केंचुए उसे खा नहीं पाते एवं इसमें थोड़े से चूने की मात्रा को मिलाकर केंचुए के खाने लायक बनाया जा सकता है।

19. खाद्य पदार्थों को उलटते–पलटते समय यह देखना चाहिए कि उसके अन्दर ज्यादा गर्मी तो नहीं हो रही है। ऐसी स्थिति में कचरे को हमेषा ऊपर–नीचे करें और पानी का छिड़काव लगातार करते रहें।

केंचुआ एवं वर्मी कम्पोस्ट का मृदा पर प्रभाव

1. जलधारण क्षमता : केंचुआ मृदा की जलधारण क्षमता को बढ़ाता है, जो नमी को लम्बे समय तक खेत में संरक्षित रखता है।

2. मृदा वातायन : कुंचए की विभिन्न प्रजातियों जमीन में सुक्ष्म छिद्र बनाती है, जससे मृदा हल्की व भूरभूरी बनती है। फलस्वरूप मृदा बातायन, जलधारण एवं जल निकास क्षमता में बढ़ोतरी होती है। तथा जड़ों के विकास में सहायक होती है।

3. मृदा अपरदन से बचावः केंचुआ द्वारा छोड़ा गया लसलसा पदार्थ पॉलीसेकेराईड, एक गोंद होता है। जो कि ऊतकों के जिवाणुओ से बनता है। यह चिपचिपा पदार्थ मृदा के जल स्थिर कण बनाकर मृदा अपरदन से सुरक्षा करता हैं।

4. वाष्पण से बचाव : केंचुआ के उत्तकों से एक पेरिट्रोफिक झिल्ली निकलती है। यह वर्मी कास्ट को पाददर्शी कवच प्रदान करती है, जो वाष्पण दर को कम करता है।

5. ह्यूमिफिकेशन को बढ़ावा : केंचुए को अत्यधिक घुमने फिरने एवं विभिन्न कार्वनिक पदार्थो को पचाने और उन्हे मल के रूप में बाहर निकालने से एक प्रकार का पॉलीसेकेराईड निकलता है, वह पॉलीसेकेराईड एनजाइम्स, जटिल और जैविक अणुओं को परिवर्तित कर देता है, जो ह्यूमिफिकेशन को बढ़ाने में सहायक होता है।

6. सूक्ष्मजैविक क्रियाशीलता : केंचुआ के चारों तरफ का वातावरण सूक्ष्मजीवों के लिए बहुत ही अच्छा होता है, क्योंकि केंचुए जो पदार्थ अपने षरीर से निकालते हैं, उस पर सूक्ष्म जीवों की वृद्धि शुरू हो जाती है और बारह निकला पदार्थ एमाइलेज, लाइपेज, सेलुलेज, प्रोटीयेज, काइटीनेज, और अन्य एन्जाइम्स धारण किये रहता है। यह कार्बनिक पदार्थो से भिन्न होता है। इसके अलावा केंचुए त्वरित नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु, फास्फोरस घोलक, सेलुलोज अपघटक, माइकोराईजा फफूँद आदि का एक अच्छा माध्यम भी है।

7. मृदा प्रदुषण पर प्रभाव : केंचुए जमीन से कार्बनिक पदार्थो को खाते समय कई जहरीले रासायनिक तत्वों के साथ–साथ कुछ फफूँद एवं निमाटोड को भी ग्रहण कर लेते है, जो उसके उत्तकों में जमा हो जाता है। केंचुए का शरीर खुद ही एक एंटीवायाटिक होता है। अतः केंचुए मृदा प्रदुषण रोकने में भी सहायक होता है।

वर्मी कम्पोस्ट से आर्थिक लाभ

केंचुओं द्वारा कचरे का कम्पोस्ट में परिवर्तित होने के साथ–साथ केंचुओं की संख्या पहले से कम से कम दो गुनी हो जाती है। इस प्रकिया को लगातार करने से पूरे वर्ष कम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है। औधोगिक स्तर पर इसे तैयार करने से एक चक्र में उत्पादक को लगभग 10,000.00 (रूपये दस हजार) रूपये का लाभ होता है।

व्यावसायिक वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन द्वारा उद्यमशीलता विकास

डा. घनंजय मंडल

कृषि विज्ञान केन्द्र, उत्तर दिनाजपुर

गांव गोलपोखर–I का 40 वर्षीय बेरोजगार स्नातक फैजुर रहमान रोजगार की तलाश में वर्ष 2008–09 में उत्तर दिनाजपुर कृषि विज्ञान केन्द्र के सम्पर्क में आया। कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा इनके संसाधनों और जरूरतों का विश्लेषण करने के बाद इन्हें ग्रामीण युवाओं के लिए वर्मी कम्पोस्ट के विशेष संदर्भ में कम्पोस्ट उत्पादन प्रणाली पर वोकेशनल प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेने की सलाह दी गई। एक विज्ञान स्नातक होने के कारण श्री रहमान ने वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन प्रणाली के प्रशिक्षण कार्यक्रम में अति उत्साह से भाग लिया और जैसी अपेक्षा थी, उन्होंने प्रशिक्षण कार्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा किया। प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् श्री रहमान परियोजना का प्रस्ताव तैयार करने, उसका मूल्यांकन कराने के संबंध में कृषि विज्ञान केन्द्र के कार्मिकों के साथ निरन्तर सम्पर्क में बने रहे और साथ ही उन्होंने कृषि विज्ञान केन्द्र के सराहना प्रमाण–पत्र के साथ प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (पीएमईजीपी) में ऋण के लिए आवेदन भी किया। तदुपरांत श्री रहमान को प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (पीएमईजीपी) से रूपये 5.66 लाख का ऋण प्राप्त हुआ और उन्होंने ''एस.के. ग्रीन बायोटेक'' नाम से एक वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन इकाई की स्थापना की। श्री रहमान ने वर्ष 2009–10 में 72 चैम्बर्स वाली एक वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन इकाई स्थापित की। इन्हें अपनी इकाई को व्यावसायिक रूप देने में उत्पादन प्रौद्योगिकी की पहल करने और उसका मानकीकरण करने में कुछ माह का समय लगा। अब इनकी इकाई में 50–55 दिनों के प्रत्येक चक्र में 8 से 10 टन तैयार उत्पाद का उत्पादन किया जाता है। अभी तक श्री रहमान ''किसान वर्मी कॉम'' के ब्राण्ड नाम से रूपये 5.00 प्रति किग्रा. की दर से 20 टन वर्मी कम्पोस्ट बेचने में सफल रहे हैं। उन्होंने अगस्त, 2010 से अपने ऋण को लौटाना भी प्रारंभ कर दिया है। वर्मी कम्पोस्ट के माध्यम से एक बेरोजगार युवा के अधूरे सपने सच हुए हैं।

एक शब्द में,यह आदर्श है कि तुम परमात्मा हो।

– स्वामी विवेकानंद